RNI No. UPHIN/2010/37866
ISSN : 2231-6647
Peer-Reviewed

त्रैमासिक पत्रिका

जलवायु

प्रकृति, विज्ञान एवं समसामयिक विमर्श की अभिव्यक्ति

वर्ष -16 | अंक : 3 - 4 | जुलाई - अक्टूबर 2026 | मूल्य - ₹50

जैव विविधता विशेषांक



संपादक
डॉ. अजय गौतम

जलवायु के सम्मानित आजीवन सदस्य



डॉ. अनिल कुमार तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल,
कमला देवी बाजोरिया डिग्री कॉलेज, दुबहर,बलिया
उ.प्र.



डॉ अनीता श्रीवास्तव
डेंटल सर्जन
आराजीबाग – आजमगढ़



ASHISH GRAPHICS

सम्पर्क करें

• DESIGNING • PRINTING • ADVERTISING

जब हमारे पास है आपके बिजनेस के प्रचार के लिये कुछ खास

• FLEX/BANNER PRINTING • VISITING CARD • LETTER HEAD
• MULTI COLOUR POSTER • GRAPHIC DESIGNING
• SOCIAL MEDIA DESIGN • MOBILE APP BANNER • DIGITAL PRINT

ASHISH VERMA - CALL : 8920506090 WHATSAPP : 8860870435

जलवायु

वर्ष : 16, अंक: 3 – 4, जुलाई–अक्टूबर 2026

■

संरक्षक

पंकज गौतम

■

प्रधान संपादक

अरूणकांत पाठक

पवन गौतम

■

संपादक

डॉ अजय गौतम

■

उप संपादक

वन्दना सिंह

विशाल तिवारी

विश्वजीत पाठक

सुधांशु मोहन पांडेय

अरुण मौर्य

डॉ मुश्ताक अहमद

■

सह संपादक

बरुण पांडेय

संतोष कुमार सिंह

अंजली सिंह

स्मिता पांडेय

उमेश विश्वकर्मा

प्रवीण कुमार पांडेय

■

प्रबंध सहयोग

चंदन यादव

मो0 असदुर्रहमान

■ **आवरण सज्जा**

आशीष ग्राफिक्स

■ **संपादकीय संपर्क**

मु0 हीरापट्टी, आजमगढ़ (यू.पी.) -276001

मो0 9415063341, 7505573555

editor.jalvayu@gmail.com

■

सलाहकार संपादक/पीयर रीव्यू समिति

डॉ कृष्ण कुमार मिश्र

वैज्ञानिक, TIFR, होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, मुम्बई

डॉ गणेश कुमार पाठक

पर्यावरणविद्, पूर्व प्राचार्य, अमरनाथ मिश्र स्नाकोत्तर महाविद्यालय, बलिया

डॉ सुधांशु कुमार मालवीय

पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

डॉ मोहम्मद खालिद

एम.डी(रेडियोलॉजिस्ट)

डॉ अब्दुल्ला

एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान, शिब्ली नेशनल कॉलेज, आज़मगढ़

डॉ एस. जेड. अली

प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान, शिब्ली नेशनल कॉलेज, आज़मगढ़

डॉ परमानंद मिश्र

प्रवक्ता, जीव विज्ञान, गांधी इण्टर कॉलेज, मालटारी, आज़मगढ़

डॉ रूपेश तिवारी

विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान, गांधी शताब्दी स्मारक स्नाकोत्तर महाविद्यालय, कोयलसा, आज़मगढ

डॉ शशांक अग्रवाल

रिसर्च एसोसिएट, भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान(IISER),पुणे

डॉ मो. फैज़ान

असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान, आरएसपीएसएसएम महाविद्यालय, मऊ

डॉ रुमाईशा

विजिटिंग रिसर्च फेलो, यूनिवर्सिटी ऑफ ससेक्स, यूनाईटेड किंगडम

डॉ रविकांत त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिकी विभाग,एलबीएसएसपीजी कॉलेज, महराजगंज

डॉ अजय सहाय

जल प्रहरी, बिहार

सदस्यता विवरण

व्हाट्सऐप : 9415063341 (Phone Pe, Paytm)

मूल्य : ₹50

वार्षिक : ₹200 (व्यक्तिगत), ₹300 (संस्थाओं के लिए)

रजिस्टर्ड : ₹400

आजीवन सदस्यता : ₹3000

Follow us on : जलवायु पत्रिका

सभी फोटो गूगल इमेज से लिये गए हैं।

पत्रिका के सभी अंक indiaclimatechange.com पोर्टल पर उपलब्ध हैं।

सभी प्रकार के विवाद आजमगढ़ न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संपादक जिम्मेदार हैं।

अनुक्रम

संवाद

- विकास बनाम जैव विविधता / **डॉ. अजय गौतम / 5**

जैव विविधता

- उत्तर प्रदेश में आर्द्रभूमि का बढता दायरा / **डॉ. पीयूष गोयल / 7**
- जैव विविधता का संकट : वैश्विक हानि और संरक्षण की पुकार / **प्रशांत सिन्हा / 12**
- जैव विविधता के क्षरण के लिए जिम्मेदार सड़कों की अवैज्ञानिक तकनीकी भी है / **गजेन्द्र दानू / 14**
- छठें महाविनाश की आहटः विलुप्त होती प्रजातियां और मानव सभ्यता का भविष्य / **डॉ. रामानुज पाठक / 17**
- हाथियों की विरासत : जैव विविधता और पर्यावरण का अनमोल हिस्सा / **सुनील कुमार महला / 20**
- पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र का टूटता संतुलन और मानव सभ्यता पर बढ़ता अस्तित्व संकट / **डॉ. अजय सहाय / 22**
- बलिया की जैव विविधता : संकट, संरक्षण एवं संवर्द्धन / **डॉ.अनिल कुमार तिवारी, डॉ.गणेश कुमार पाठक / 25**
- असम की जैव विविधता : संकटग्रस्त जीव, वनस्पति और उनका संरक्षण / **मंजूरी डेका / 30**
- मध्य भारत के मैकाल जैव–सांस्कृतिक परिक्षेत्र में जैव विविधता का अध्ययन / **रोहित पासी, डॉ. अमित भूषण द्विवेदी / 35**
- आधुनिक विकास और जैव विविधता पर संकट : एक तथ्यपरक विश्लेषण / **बबिता कुमावत / 38**

प्रदूषण

- दिल दहलाने लगा है शोर / **संतोष बंसल / 41**

विरासत

- धर्म, प्रकृति और पर्वत : सम्मेद शिखरजी का ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व / **डॉ. अमित चन्ना / 44**

आलेख

- स्कूली पाठ्यचर्या में स्थानीय जैव विविधता अन्वेषण का समावेश : नागरिक विज्ञान, अनुभवात्मक
- अधिगम और संरक्षण चेतना का एक अध्ययन / **निर्मल कुमार न्योलिया / 46**

शोध आलेख

- गढ़वा जिले में रबी फसल आच्छादन एवं शुष्क कृषि का एक भौगोलिक अध्ययन / **शिवपूजन प्रजापति, डॉ. उमेश चंद्र नाथ तिवारी / 50**
- अज्ञेय के कथा साहित्य की स्त्रियां : मन, मौन और विद्रोह / **डॉ. प्रतीक्षा दूबे / 56**

दृष्टांत

- इटावा सफारी पार्क : जैव विविधता का जीवंत संसार / **शशांक पटेल / 60**

आखिरी पन्ना

- जेन जी बनाम .... भारतीय जनमानस / **डॉ. मुश्ताक़ अहमद / 61**

संवाद

विकास बनाम जैव विविधता

जैव विविधता पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीवों का समुच्चय है जो प्रकृति का संतुलन बनाए रखता है। जैव विकास के क्रम में सभी जीवों ने पर्यावरण में अपनी भूमिका निर्धारित की है। यह भूमिका सिर्फ अपने जीवनयापन के लिए ही नहीं बल्कि दूसरे जीवों के साहचर्य के साथ प्राकृतिक संतुलन भी बनाए रखने की रही है। मानव सभ्यता के विकास की कहानी की बुनियाद जैव विविधता के संरक्षण के इतिहास के साथ जुड़ी हुई है। वर्षों तक मनुष्य प्रकृति के सीधे संपर्क में रहा है इसलिए उसका सभी प्रजातियों के साथ अपनत्व का संबंध रहा है। यही कारण है कि बहुत सारे ऐसे जन्तु हैं जो हमारे घरों में या कहें कि हमारी रसोई तक अपनी पहुंच बनाए हुए हैं। ये हमारे बीच रहना चाहते हैं। इन्हें थोड़ा सा भी अपनत्व मिलने पर आपके मित्र हो जाते हैं। मनुष्य और जानवरों के बीच प्राचीन काल से बेहतर संबंध रहा है। परंतु पिछले 4 दशकों में यह संबंध कमजोर हुआ है, इसे कमजोर करने में सबसे बड़ी भूमिका हमारी आधुनिक विकास के प्रणाली की है। विकास की हनक ने प्राकृतिक संसाधनों के विनाश में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनके बीच मनुष्य ने अपना विकास तो किया लेकिन दूसरी प्रजातियों के विनाश में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ा। जीवों के सहअस्तित्व के सिद्धांत को तहस–नहस करने में अपनी पूरी ताकत लगा दी। विगत 4 दशकों से विकास के नाम पर जो कुछ किया जा रहा है वह जैव विविधता में असंतुलन पैदा कर रहा है। पहाड़, जंगल, नदियां जो जैव विविधता को समृद्ध रखने में सहायक हुआ करते थे वे अब मानवीय गतिविधियों की वजह से संकट में दिखाई दे रहे हैं। दो तरह के मनुष्यों से भरी दुनिया में एक वर्ग प्रकृति के साहचर्य की बात करता है जिनकी संख्या दुनिया में 5 प्रतिशत से भी कम है। वहीं दूसरी तरफ ऐसे लोग भी हैं जो प्रकृति के विनाश की पटकथा लिखते हुए आर्थिक विकास में दिन–दूना रात चौगुना बढ़ोत्तरी कर रहे हैं। इनके लिए पहाड़, जंगल और नदियां व्यक्तिगत संसाधन नजर आते हैं। वे जब चाहें पहाड़ तोड़ दें, जब चाहें नदियों में खनन करवा दें और जब चाहें जंगलों को कटवा दें, इन्हें सरकारी संरक्षण प्राप्त हो रहा है। यह सब अब गांवों तक पहुंच चुका है। कुछ दिनों पहले एक गांव में 70 बीघा का एक बाग जो लगभग 150 वर्ष पुराना था, उससे मिट्टी निकालने के लिए पूरा बाग समाप्त कर दिया गया। 50 से ऊपर जीव–जंतुओं की प्रजातियों का आवास लोगों ने चंद पैसों के लिए बेच दिया। जेसीबी लगाकर जब यह बाग काटा जा रहा था तो उन बेजुबान जीवों का रूदन असंवेदनशील व्यक्तियों तक नहीं पहुंच रहा था क्योंकि उनके कान बंद थे। ऐसा माना जाता है कि पृथ्वी पर 130 लाख जीव–प्रजातियां मौजूद हैं। अन्य अज्ञात प्रजातियों की खोज निरंतर जारी है। इनमें से कई प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और कई विलुप्ति की कगार पर खड़ी हैं। पृथ्वी पर उपस्थित पारितंत्र को बचाए रखने के लिए यह जरूरी है सभी पादप और जंतु प्रजातियां बची रहें क्योंकि किसी एक प्रजाति के खत्म होने से पारिस्थितिकी तंत्र संकट में आ सकता है।

जैव विविधता के क्षरण में सबसे बड़ी भूमिका प्राकृतिक वास स्थानों के विनाश का रहा है। जब वास स्थान का विनाश होता है तो पशु–पक्षियों का स्थानांतरण जिन दूसरी जगहों पर होता है, उन्हें उस स्थान की स्थानिक प्रजातियों से संघर्ष करना पड़ता है, जिसमें उनकी मृत्यु हो जाती है और विलुप्त होने का खतरा भी बढ़ जाता है। कई प्रजातियां इस धरती से इसलिए विलुप्त हो गईं क्योंकि उनके वास स्थान में परिवर्तन हो गया था। सफेद पांडा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है जो बांस की पत्ती खाता था और बांस के जंगलों में रहता था, समय के साथ जब बांस के जंगल खत्म हुए तो किसी दूसरे विकल्प को यह अपना नहीं पाया और विलुप्त हो गया। इसी प्रकार बहुत सी प्रजातियां हैं जो वास स्थानों के नष्ट होने से खत्म हुई हैं। गिद्ध, प्राकृतिक अपघटक के रूप में जाना जाता रहा है जिसकी खोज करने और गिनती करने के लिए सरकारों ने खूब पैसे बहाए लेकिन अभी तक कोई सही रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई। जन्तुओं और पादप प्रजातियों को अपने ही बौद्धिक जंतु मनुष्य से बड़ा खतरा है। इसी बौद्धिक जंतु ने धरती पर उपस्थित डोडो नामक ऐसे पक्षी को खत्म कर दिया जो उड़ नहीं सकता था। बौद्धिक जंतुओं ने इसका फायदा उठाया और खूब दोहन किया। भारत में जैव विविधता को सबसे ज्यादा नुकसान अनियोजित विकास से हुआ है। सड़कों के चौडीकरण के नाम पर हजारों देवदार के पेड़ों को काटने का आदेश पिछले दिनों उत्तराखंड में दिया गया था। जनता सड़क पर उतरी तो पेड़ों की कटाई रुकी। हैदराबाद

विश्वविद्यालय के पीछे रातों–रात पेड़ों को कटते और जानवरों की लाशें देखकर लोगों में आक्रोश पैदा हो गया, जिसके दबाव में कटाई रुकी। यह सभी जानते हैं कि विकास और जैव विविधता का सीधा संबंध है। इसके बावजूद विकास का विनाश मॉडल अपनाया जा रहा है। यह बौद्धिक जंतु भी आज नहीं तो कल जाएगा, विलुप्त हो जाएगा क्योंकि वह अपनी जड़ें खुद ही ढूंढ रहा है।

इन सबके बीच सुखद ख़बर यह है कि देश के अलग–अलग कोने से इस प्रकार की खबरें लगातार आ रहीं हैं कि आम जनमानस सरकारी आदेश के खिलाफ जंगलों और नदियों को बचाने के लिए सड़क पर आ रहा है। यह घटना मन में एक तरह का संतोष तो पैदा करती है कि लोग जागरूक हो रहे हैं लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या नीति–नियंताओं के मन में भी जैव विविधता को लेकर कोई चेतना जागृत हुई है या नहीं। हमें नहीं लगता। शैक्षिक संस्थाओं में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए जागरुकता संबंधी कार्यक्रम केवल फाइलों की शोभा बढ़ाते हैं, धरातल पर कुछ नज़र नहीं आता है। पिछले वर्ष अरावली पर्वत को लेकर अदालती फैसले के खिलाफ जो असंतोष उपजा और इस फैसले को बदलने के लिए जो जनमानस इकट्ठा हुआ वह संकेत दे रहा है कि अभी भी कुछ लोगों में प्राकृतिक विरासतों के प्रति प्रेम बरकरार है। इनके न होने से किन–किन परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है।

वैज्ञानिकों की मानें तो वह देश ज्यादा समृद्ध होगा जहां जैव विविधता की प्रचुरता होगी। जहां प्रकृति और मनुष्य का साहचर्य मजबूत होगा, पारिस्थितिकी संतुलन बेहतर होगा। हमें अपनी भावी पीढ़ी को क्या सौंपना है, यह सोचने का विषय है। हम उन्हें जैव विविधता विहीन कंक्रीट की दुनिया देंगे या समृद्ध प्राकृतिक विरासत वाली दुनिया।

अंत में....

प्रस्तुत अंक 'जैव विविधता' विशेषांक के रूप में आपके सामने है। कुछ तकनीकी समस्याओं के कारण यह अंक विलंब से आया है। 'जलवायु' पत्रिका अपने सीमित संसाधनों में पिछले डेढ़ वर्षों में तीन विशेषांक प्रकाशित कर चुकी है। पत्रिका का अगला अंक 'हिन्दी साहित्य में पर्यावरण' विशेषांक रहेगा।

'जैव विविधता' विशेषांक पर आपकी आलोचनात्मक टिप्पणियों के इंतजार में.....

□ डॉ अजय गौतम

◆◆◆

उत्तर प्रदेश में आर्द्रभूमि का बढता दायरा

डॉ. पीयूष गोयल
वैज्ञानिक ऐमरिट्स, उत्तराखंड राज्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यूकॉस्ट),
विज्ञान धाम, झाझरा, चकराता रोड, देहरादून–248015
peyushgoyal@gmail.com

⟶ आर्द्रभूमि (वेटलैंड) अक्सर नमी, दलदली भूमि वाले क्षेत्र अथवा 6 मीटर से कम गहराई वाले तटीय समुद्री क्षेत्र होते हैं, जहाँ वर्षभर आंशिक अथवा पूर्णरूप से पानी भरा रहता है। जहाँ भी जल और भूमि का मिलन होता है, वहां आर्द्रभूमि पाई जाती है, जिसमें मैंग्रोव वन, पीटभूमि, दलदल नदियाँ और झीलें, डेल्टा, बाढ़ के मैदान और जलमग्न वन, धान के खेत और प्रवाल भित्तियां भी शामिल हो सकती हैं। आर्द्रभूमि को भू–आकृतियों या जल–निकायों से पृथक करने वाला प्राथमिक कारक इसमें उपलब्ध जलीय पौधों की विशिष्ट प्रजातियाँ हैं, जो अद्वितीय जलयुक्त मिट्टी के अनुकूल होती हैं। पारिस्थितिकी तंत्र (इकोलॉजी सिस्टम) के लिए आर्द्रभूमि फेफड़ों की तरह काम करती है, एवं पशु–पक्षियों और वनस्पतियों की जैवविविधता को बढ़ावा देने के साथ उन्हें सुरक्षित और सन्तुलित बनाए रखने, पानी के शुद्धिकरण, बाढ़ नियंत्रण, जैवविविधता संरक्षण (बायोडाइवर्सिटी कंसर्वेशन) आदि में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। लगभग एक अरब से अधिक लोग अपनी आजीविका के लिए इनपर निर्भर रहते हैं। आर्द्रभूमि पृथ्वी के 6 प्रतिशत क्षेत्र को कवर करती हैं, और वैश्विक 40 प्रतिशत प्रजातियों को आश्रय और प्रजनन स्थल प्रदान करती है।

पारिस्थितिक तंत्र में जैवविविधता को संजोती आर्द्रभूमि

आर्द्रभूमि के सन्दर्भ में रामसर संधिः आर्द्रभूमि के संरक्षण और उनके समझदारी भरे उपयोग के लिए ईरान के रामसर शहर में 02 फरवरी, 1971 को आयोजित रामसर अभिसमय (कन्वेंशन) के तहत यह एक अंतर्राष्ट्रीय संधि है, जिसे 21 दिसम्बर, 1975 को लागू किया गया था। भारत 01 फरवरी, 1982 को इस संधि में शामिल हुआ था, तथा बाद में 1999–2002 तक इसकी स्थाई समिति का सदस्य था। इस संधि का मुख्य उद्देश्य पारिस्थितिक तंत्र के लिए महत्वपूर्ण आर्द्रभूमि स्थलों की रक्षा करना है। विश्व आर्द्रदिवस प्रत्येक वर्ष 2 फरवरी को मनाया जाता है। रामसर अभिसमय का मुख्य सचिवालय स्विट्जरलैंड के ग्लैंड शहर में स्थित है, जबकि भारत में इसके संरक्षण में जिम्मेदार नोडल एजेंसी पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय है, जो इससे संबंधित गतिविधियों का प्रबंधन करता है। रामसर अभिसमय मुख्यतः तीन स्तंभों

(1) अपने सभी आर्द्रभूमि क्षेत्रों का विवेकपूर्ण उपयोग की दिशा में काम करना (2) उपर्युक्त आर्द्रभूमि को अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व की आर्द्भूमियों (रामसर सूची) में नामित करना और उसके प्रभावी प्रबंधन को सुनिश्चित करना, और (3) सीमा पार आर्द्रभूमि, साझा आर्द्रभूमि प्रणालियों और साझा प्रजातियों पर अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग करना आदि के अंतर्गत अनुबंधित पक्ष प्रतिबद्ध होता है, जो कम से कम एक आर्द्रभूमि स्थल को नामित करने का वचन इस प्रतिबद्धता के साथ सुनिश्चित करता है, कि वह उस स्थल का पारिस्थितिक स्वरूप बरकरार रखेगी। यह संधि प्रकृति के संरक्षण के लिए मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय संघ (आईयूसीएन), बर्ड लाइफ इंटरनेशनल, अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान (आईडब्ल्यूएमआई), आर्द्रभूमि अंतर्राष्ट्रीय, वाइल्डफॉवल एंड वेटलैंड्स ट्रस्ट (डब्ल्यूडब्ल्यूटी), डब्ल्यूडब्ल्यूएफ इंटरनेशनल के साथ मिलकर काम करता है। किसी भी बड़े पारिस्थितिक परिवर्तन पर नजर रखने के लिए रामसर स्थलों को मॉन्ट्रो रिकॉर्ड (आर्द्रभूमियों का रजिस्टर) में रखा जाता है, जो इन आर्द्रभूमि को पारिस्थितिक रूप में तकनीकी विकास, प्रदूषण या अन्य मानवीय हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप हुए परिवर्तन के कारण इसे सकारात्मक और नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।

स्विट्जरलैंड के ग्लैंड शहर में स्थित रामसर अभिसमय का मुख्य सचिवालय वर्ष 1982 से 2013 तक रामसर सूची में भारत के 26 रामसर स्थल थे, तथा वर्ष 1914 से 2024 तक इसमें 59 रामसर स्थल जोड़े गए थे। पिछले वर्ष दिसंबर, 2025 तक भारत में अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व का दर्जा पाने वाले रामसर स्थलों की संख्या बढ़कर 96 हो गई थी। वर्ष 2026 में उत्तर प्रदेश के एटा जिले में पटना पक्षी अभ्यारण्य, गुजरात के कच्छ जिले में छारी–ढांड और उत्तर प्रदेश के अलीगढ जिले में

शेखा पक्षी अभ्यारण्य को शामिल करने से 22 अप्रैल, 2026 तक यह संख्या बढकर 99 हो गई है। इस वर्ष विश्व आर्द्रभूमि दिवस की थीम 'आर्द्रभूमि और पारंपरिक ज्ञानः सांस्कृतिक विरासत का उत्सव मनाना' है। भारत में अब तक सबसे ज्यादा 20 रामसर स्थल तमिलनाडु में हैं, जबकि दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश में 12 रामसर स्थल हैं। विश्व में 171 रामसर अनुबंधित देशों के वर्तमान में 25 लाख वर्ग किलोमीटर (मेक्सिको से बढे) क्षेत्रों में फैले 2,400 से अधिक रामसर स्थल हैं।

आर्द्रभूमि शहर प्रत्यानन मान्यता वेटलैंड सिटी एक्रीडीएशन योजनाः कॉनफिडरेशन ऑफ पार्टीज या पक्षकारों का सम्मलेन–12 (सीओपी–12), जो कि संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफसीसीसी) के अंतर्गत आने वाले देशों की एक बैठक के दौरान रामसर कन्वेंशन ने संकल्प XII 10 के तहत वर्ष 2015 में इस योजना को प्रारंभ किया था। योजना का उद्देश्य शहरी और उप–शहरी वातावरण में उन शहरों को मान्यता देना है, जिन्होंने अपने शहरी आर्द्रभूमियों के संरक्षण और सुरक्षा के लिए असाधारण कदम उठाए हैं। आर्द्रभूमि शहर प्रत्यानन की मान्यता (डब्ल्यूसीए) प्राप्त करने के लिए परिचालन मार्गदर्शन के छः अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों को पूरा करना पड़ता है। यह उन शहरों को अवसर देता है, जो अपनी प्राकृतिक और मानव निर्मित आर्द्रभूमि को महत्त्व देते हैं। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय ने तीन भारतीय शहर इंदौर, भोपाल और उदयपुर को नगर निगमों के सहयोग से संबंधित राज्य वेटलैंड प्राधिकरण से प्राप्त प्रस्ताव के आधार पर वेटलैंड सिटी मान्यता के लिए नामांकन भेजा है, जो आर्द्रभूमि संरक्षण के साथ ना केवल सार्वजनिक जागरूकता पैदा करेगा, बल्कि देश भर में अमृत धरोहर के कार्यान्वयन में भी सहायता प्रदान करेगा। भारत में क्षेत्रफल के 4.5 प्रतिशत हिस्से में 7 लाख से अधिक बिना अधिसूचित विविध प्रकार की आर्द्रभूमियां उपलब्ध हैं। हालंकि, इनकी संख्या 1,307 के करीब है, जिसमें से 113 आर्द्रभूमि को उनके पारिस्थितिक महत्त्व और जैवविविधता में योगदान के कारण महत्वपूर्ण आर्द्रभूमि के रूप में मान्यता दी गई है। देश की केवलादेव झील उद्यान (राजस्थान) और लोकटक झील (मणिपुर) मॉन्ट्रो रिकॉर्ड में शामिल हैं, जबकि चिल्का झील, जिसे पहले शामिल किया गया था, अब मॉन्ट्रो रिकॉर्ड से हटा दिया गया है।

बदलता आर्द्रभूमि पारिस्थितिक तंत्रः जैवविविधता और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं पर अंतरसरकारी विज्ञान नीति मंच (आईपीबीईएस) के वैश्विक आंकलन के अनुसार इस समय आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र सबसे अधिक खतरे का सामना कर रहा है, जिसमें वनस्पतियों का नुकसान, लवणीकरण, अत्यधिक जलभराव, प्रदूषण, आक्रामक प्रजातियाँ, अत्यधिक विकास और सड़क निर्माण आदि से आर्द्रभूमियों को नुकसान पहुँचा है। कई मौजूदा भारतीय शहर जैसे कोलकाता, प्रयागराज, पुणे, अहमदाबाद, पटना, लखनऊ आदि नदियों के किनारे बसे हैं, जबकि मुम्बई, चेन्नई, कोच्चि जैसे कई शहर समुद्री तट के किनारे विकसित हुए हैं। जीव–जंतु की प्रजातियां और जैवविविधता से समृद्ध आर्द्रभूमि एवं शहरों की प्राकृतिक जल निकासी वाले स्थानों पर बडे पैमाने पर प्रदूषण, अतिक्रमण, घर, कालोनी, औद्योगिक परिसर, संस्थान आदि के बस जाने से शहरों की लगभग 85 प्रतिशत आर्द्रभूमि नष्ट हो चुकी है। कई शहरों में नमी वाली जमीन के संरक्षण में बड़ी चुनौतियाँ हैं, और प्राकृतिक जलाशय और तालाबों आदि का विनाश होने से शहरों को भारी नुकसान पहुंचा है। आर्द्रभूमि पहले इन शहरों को सूखे और बाढ़ दोनों के बुरे प्रभावों से बचाती थीं, परन्तु शहरी नियोजन और विस्तार ने इन आर्द्रभूमियों और जल निकायों की उपेक्षा करना शुरू कर दिया, जिससे कि चरम मौसमी घटनाओं की आवृति, अत्यधिक वर्षा और गर्मियों में तापमान में अत्यधिक बढ़ोत्तरी होना शुरू हो गया है। शहरों व उप–शहरों में नमी वाली जगहों की कमी होने से जैवविविधता और जीवों के पर्यावास का भी काफी ह्रास हुआ है। जैवविविधता हानि के क्रमिक प्रभावों के कारण ही विश्व विभिन्न प्रकार के जोखिम बिन्दुओं के कगार पर पहुँच गया है। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (डब्ल्यूडब्ल्यूएफ) के द्वारा जारी लिविंग प्लैनेट इंडेक्स (एलपीआई) के अनुसार चेन्नई की आर्द्रभूमि का लुप्त होना स्थानीय जोखिम बिन्दुओं तक पहुँचने से पहले की एक प्रारंभिक चेतावनी है।

आर्द्रभूमि संरक्षण कानूनः भारत सरकार ने आर्द्रभूमि (वेटलैंड) से जुड़े मुद्दों को हल करने के लिए वर्ष 2016 में वेटलैंड (संरक्षण एवं प्रबंधन) नियम 2010 को पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम 1986 के तहत स्वीकार किया है। 2011 के राष्ट्रीय आर्द्रभूमि एटलस में सम्पूर्ण भारत में 15.2 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में 7,57,000 आर्द्रभूमि का दस्तावेजीकरण किया गया था। इसी प्रकार नियम 2017 आर्द्रभूमि की पहचान और अधिसूचना, गतिविधियों के विनियमन और राज्य आर्द्रभूमि

प्राधिकरणों की स्थापना के लिए एक कानूनी ढांचे को परिभाषित करता है। वैश्विक स्तर पर भी नेताओं ने जैविक विविधता और स्वदेशी अधिकारों के संरक्षण के उद्देश्य से चार व्यापक और 23 उद्देश्यों वाला एक कुनमिंग–मॉन्ट्रियल जैवविविधता ढांचा (जीबीएफ) अपनाया है, जिसका एक लक्ष्य 2030 तक स्थलीय, अंतर्देशीय जल और तटीय समुद्री क्षेत्रों के 30 प्रतिशत हिस्से का प्रभावी प्रबंधन और संरक्षण करना शामिल है।

भारत सरकार ने वर्ष 2023 में अमृत धरोहर योजना की शुरुआत की है, जिसका उद्देश्य रामसर स्थलों के संरक्षण में सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना और आर्द्रभूमि संरक्षण को स्थायी आजीविका के साथ एकीकृत करना है। वर्ष 2025 के वैश्विक आर्द्रभूमि पूर्वानुमान के अनुसार 1970 से वैश्विक आर्द्रभूमि का 22 प्रतिशत हिस्सा विशेष रूप से मीठे पानी के पारिस्थिक तंत्र का नष्ट हो चुका है। भूमि उपयोग के परिवर्तन के कारण लाखों हेक्टेयर आर्द्रभूमि नष्ट हो चुकी है। कुछ दशकों से इन सभी दलदली भूमि का हिसाब ठीक से नहीं रख पाने तथा मानवीय गतिविधियों की वजह से आर्द्रभूमियां गायब हो रहीं हैं, और इनके क्षय होने की औसत दर प्रतिवर्ष 0.52 प्रतिशत देखी गई है। कई देशों ने इन दलदली जमीनों के फायदों को स्वीकारा और संरक्षित किया है। परन्तु कई भारतीय शहरों में केन्द्रीय और राज्य स्तर की एजेंसियों की जिम्मेदारी के दायरे में होने के बावजूद, अधिकार क्षेत्र स्पष्ट नहीं होने से इनके रखरखाव में कोई खास दिलचस्पी दिखाई नहीं देती है। उदाहरण के लिए दिल्ली में वन विभाग और दिल्ली जल बोर्ड को छोड़कर किसी अन्य विभाग के पास दलदली भूमि के प्रबंधन का दायित्व नहीं माना गया है।

उत्तर प्रदेश के आर्द्रभूमि रामसर स्थलः उत्तर प्रदेश में आर्द्रभूमि रामसर अभिसमय (कन्वेंशन) के तहत घोषित 12 रामसर स्थल हैं, जो राज्य के लगभग 39,700 हेक्टेयर से अधिक क्षेत्र को कवर करते हैं। इन 12 रामसर स्थल के आलावा राज्य में 1.2 लाख से अधिक छोटे–बढे प्राकृतिक और मानव निर्मित आर्द्रभूमि क्षेत्र हैं। प्रदेश सरकार ने 5 जिलों में 16 नई आर्द्रभूमि को संरक्षित करने की प्रक्रिया शुरू की है। बिल्हौर, कानपुर की गंगा कटरी में स्थित जैसरमऊ आर्द्रभूमि, ग्रेटर नोएडा का सूरजकुंड, अकबरपुर के बनगांव मार्ग पर 17 किमी दूर मौरापारा गाँव में 43 हेक्टेयर में फैली भदौना झील आदि वन्यजीवों के लिए एक सुरक्षित स्थान है, जो प्रकृति को जीवंत करती नजर आती हैं।

उत्तर प्रदेश में अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के रामसर स्थलों की सूचि 21 अप्रैल, 2026 को उत्तर प्रदेश के अलीगढ जिले में मुगल काल के कस्बे जलाली के निकट स्थित शेखा गाँव में 'शेखा पक्षी विहार' को भारत के 99वें रामसर स्थल के रूप में वैश्विक सूची में मान्यता दी गई है। यहाँ अक्तूबर माह से मार्च महीने तक कई देशों के 40–45 प्रजातियों के प्रवासी पक्षियों का डेरा रहता है। माना जाता है, कि यह गाँव कभी निजामुद्दीन शेख की शिकारगाह हुआ करता था, परन्तु जब प्रसिद्ध पक्षी वैज्ञानिक (ओर्नेथोलॉजिस्ट) डॉ. सलीम अली अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय आए, तो उन्होंने इस झील की खोज की थी। उनकी मांग के आधार पर ही भारत सरकार ने यहाँ कानून बनाकर शिकार करना प्रतिबंधित किया था। वर्ष 2003 में इस झील को उत्तर प्रदेश की स्थानीय झील का दर्जा मिला, और वर्ष 2016 में इसे राष्ट्रीय पक्षी विहार घोषित किया गया था।

भारत के अलीगढ में स्थित शेखा गाँव पक्षी विहार रामसर स्थल उत्तर प्रदेश में आर्द्रभूमि संरक्षण में चुनौतियाँः हालांकि वन और नदियाँ भूमि वर्गीकरण प्रणाली में स्थान पातीं है, परन्तु आर्द्रभूमि का इसमें कोई विशिष्ट स्थान नहीं दिया गया है, जिसकी वजह से इन आर्द्रभूमि को जमीनों की श्रेणी 6(1) अर्थात जल से ढकी गैर–कृषि भूमि में रखा गया है। इस कारण से कानूनी रूप से इसे किसी भी व्यक्ति या संस्था को हस्तांतरित करना असंभव हो गया है।

उत्तर प्रदेश में पहली बार उपग्रह (सेटेलाईट) से राजस्व, ग्राम समाज व अन्य जलमग्न क्षेत्रों में 17 हजार आर्द्रभूमियों को खोजा गया है। उप–आर्द्रभूमि प्राधिकरण अब इन आर्द्रभूमि को चिन्हित कर रहा है। बहराइच जिले में 1,383 हेक्टेयर क्षेत्र में फैले प्राकृतिक 'तालाब बघेल' के भू–आलेख में 567 हेक्टेयर भाग को 6(1) के तहत आर्द्रभूमि के रूप में वर्गीकृत किया गया था, जबकि राजस्व विभाग ने नवम्बर, 2024 में क्रियान्वित प्रक्रिया में इसे 40 भूखंडों वाली 441 हेक्टेयर राजस्व भूमि को आर्द्रभूमि श्रेणी के अंतर्गत ही चिन्हित किया है।

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में एक खुली अंडाकार ^U* आकार की 34.32 वर्ग किलोमीटर में फैली सुरहा ताल (झील) भी गंगा नदी के मध्य भाग में घाघरा नदी (उत्तर) और गंगा नदी (दक्षिण) में है, प्रदेश की एक सबसे महत्त्वपूर्ण और बड़ी आर्द्रभूमि है। इस जीवंत झील की उत्पत्ति के बारे में स्पष्ट और कम जानकारी

है, जिसमें मधा और गरारी नाले बहकर पानी लाते हैं, जबकि बलिया कस्बे के पास से गुजरने वाला 23 किमी लम्बा कटहर नाला इसे गंगा नदी में बहा देता है। इसके पारिस्थितिक महत्त्व को देखते हुए 27 मार्च, 1991 को उत्तर प्रदेश वन विभाग द्वारा इसे पक्षी अभ्यारण्य के रूप में अधिसूचित किया गया था। 10 दिसंबर, 2002 को इसका आधिकारिक नाम 'जय प्रकाश नारायण पक्षी अभ्यारण्य' रखा गया। राष्ट्रीय आर्द्रभूमि एटलस 2011 और राज्य सरकार ने इसे प्राकृतिक आर्द्रभूमि श्रेणी (कोड 1102) के अंतर्गत वर्गीकृत किया हुआ है, जो वर्षभर भूजल पुनर्भरण क्षेत्र के रूप में कार्य करती है। 8 मार्च, 2019 को पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के द्वारा आर्द्रभूमि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक गतिविधियों के चलते इसके आसपास के एक किलोमीटर के क्षेत्र को पर्यावरण संवेदनशील क्षेत्र (ईएसजेड) घोषित कर प्रतिबंध और नियमन लागू किए गए थे। इस मीठे पानी वाले जलाशय में 40 से अधिक मछली प्रजातियाँ और जलीय जीव पाए जाते हैं, तथा इसके आसपास का क्षेत्र कई देशी जलीय और तटवर्ती पक्षियों की प्रजातियों के लिए आवास प्रदान करता है। संक्षेप में, सुरहा ताल एक संकटग्रस्त आर्द्रभूमि के रूप में देखी जा रही है, जिसमें नियमों का स्पष्ट उल्लंघन और अतिक्रमण इस आर्द्रभूमि को नष्ट कर रहा है।

बलिया जिले में उत्तर प्रदेश की संकटग्रस्त आर्द्रभूमि

अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिलने के बावजूद संरक्षण के आभाव में यह आर्द्रभूमियाँ लगातार खराब और प्रदूषित होती जा रही हैं। इन समस्याओं के चलते तमिलनाडु में आर्द्रभूमि अभियान (मिशन) की स्थपना हुई थी। दलदली भूमि से संपन्न कोलकाता (ईस्ट कोलकाता आर्द्रभूमि) जो प्रतिदिन 600 लाख लीटर सीवेज और खराब पानी को प्राकृतिक रूप से शुद्ध करती है के आलावा मुंबई (मैंग्रोव), चेन्नई (अडयार नदी का क्षेत्र) और गुवाहाटी (दीपोर बील झील) तथा अनेकों जल निकायों की स्थिति (स्वच्छ पानी की उपलब्धता, सतत जल उपयोग) बेहद असंतोषजनक है। वर्ष 2019 का चेन्नई जल संकट भारतीय शहरों में खराब जल संसाधन और योग्य पानी के प्रबंधन की झलक पहले ही दिखा चुका है। दीपोल बील झील, गुवाहाटी के आसपास के क्षेत्रों में बाढ़ के पानी को बाहर निकालने (स्टार्मवाटर ड्रेन) के आलावा यहाँ प्रदूषण, प्लास्टिक, कूड़ा–करकट और मानवीय अनदेखी के कारण जल निकाय और जलीय जैवविविधता काफी हद तक प्रभावित रही है, जहाँ मछली पकड़ने और पारंपरिक खेती में आजीविका के स्त्रोत के अलावा प्रवासी पक्षियों और जलीय वनस्पतियों की उम्मीद में जंगलों से एशियाई हाथी और दूसरी प्रजातियों के जानवर भी यहाँ आते हैं।



उत्तर प्रदेश में एक जिला एक आर्द्रभूमि मुहिमः उत्तर प्रदेश में जिस तरह 'एक जिला, एक उत्पाद (ओडीओपी)' 'एक जिला एक पर्यावरण पर्यटन (ईको टूरिस्म)' और 'एक जिला एक क्यूजीन (ओडीओसी)' ने प्रदेश के जिलों को विशिष्ट पहचान दिलाई है। इसी तर्ज पर पर्यावरण संरक्षण की एक बड़ी मुहिम 'एक जिला एक आर्द्रभूमि (ओडीओडब्ल्यू)' की महत्वाकांक्षी पहल ना केवल जलाशयों का सौन्दर्यीकरण करना है, बल्कि जैवविविधता संरक्षण, भूजल संवर्धन और स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाना है। आर्द्रभूमि में तराई के क्षेत्र, आर्द्र घास के मैदान, गंगा के मैदानी भाग की नदी–तटीय आर्द्रभूमि और विंध्य पर्वतमाला एवं पठार के तालाब एवं पोखर आदि शामिल हैं, जिसने प्रदेश की सांस्कृतिक विविधता के साथ खाद्य और जल सुरक्षा सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रत्येक जिले में एक वेटलैंड को मॉडल रूप में विकसित करने से पर्यावरणीय संतुलन के साथ पर्यटन और रोजगार को बढ़ावा मिलेगा।

जनवरी 2021 में राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा अभियान (नेशनल मिशन फॉर क्लीन गंगा) परियोजना ने शहरों में दलदली भूमि के प्रबंधन के लिए स्थानीय हितधारकों पर केन्द्रित जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण विभाग ने 2018–19 जल निकायों की गणना (सेंसस) कर पूरे भारत में 24,24,540 जल निकाय (वाटर बॉडीज) की गिनती की थी। इसमें से 97.1 प्रतिशत (23,55,055) को ग्रामीण क्षेत्रों में और 2.9 प्रतिशत (69,485) को शहरी क्षेत्रों में बताया गया था। हालाँकि इसमें संरक्षण की आवश्यकता वाले जल निकायों विशेष रूप से शहरों और उसके आसपास में अतिक्रमण के बारे में नहीं बताया गया था। उत्तर प्रदेश के 27 जिलों में चल रही राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा अभियान (नेशनल मिशन फॉर क्लीन गंगा) परियोजना के अंतर्गत चिन्हित आर्द्रभूमियों को और उसकी सहायक नदियों से जुड़े जलाशयों के संरक्षण को एक जिला एक आर्द्रभूमि (वन डिस्ट्रिक्ट–वन वेटलैंड) योजना से प्राथमिकता मिलेगी। इस योजना से जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के साथ आर्द्रभूमियों के द्वारा एक प्राकृतिक स्पंज की तरह बाढ़ नियंत्रण, कार्बन अवशोषण और जल संरक्षण में मदद मिलेगी। एक जिला एक आर्द्रभूमि योजना में उत्तर प्रदेश के हर जिले में अब एक प्रमुख आर्द्रभूमि (वेटलैंड) को चिन्हित कर उसके संरक्षण, पुनर्जीवन और समग्र विकास के क्रियान्वयन में विभागीय समन्वय के साथ जनभागीदारी, और व्यापारिक घरानों की सीएसआर (कारपोरेट सोशल रिस्पोंसबिलिटी) को जोड़ते हुए निजी क्षेत्र की भूमिका तय की जाएगी, और चिन्हित आर्द्रभूमि के संरक्षण, घेराबंदी, जैवविविधता पार्क, बर्ड–वाचिंग क्षेत्र (जोन) और प्रकृति पथ जैसी सुविधाएँ भी विकसित होंगी। पर्यटन की संभावनाओं वाले जिलों में पर्यटन विभाग इनके विकास कार्यों में सहयोग करेगा। उत्तर प्रदेश के हर जिले में अपना हरित धरोहर स्थल विकसित करने की यह पहल प्रदेश को सतत विकास की एक नई दिशा की ओर ले जाने में अग्रसर है।

मानवीय गतिविधियों और वैश्विक तापमान के चलते जंगलों की तुलना में आर्द्रभूमि तीन गुना अधिक तेजी से विलुप्त हो रहीं हैं, जिनके स्वास्थ्य को बनाए रखना जैवविविधता और पक्षी प्रजातियों के संरक्षण के लिए आवश्यक है, जो इन पर निर्भर करते हैं। भारत 1940 से 2014 के मध्य शहरीकरण के कारण अपनी लगभग एक तिहाई आर्द्रभूमि खो चुका है। सवाना घास के मैदानों जैसे पारिस्थितिक तंत्रों सहित इन आर्द्रभूमियों पर आश्रित अधिकांश पक्षी प्रजातियों के पर्यावास के नुकसान के साथ कई प्रवासी पक्षियों की संख्या तेजी से घट रही है। यूनेस्को के अनुसार आर्द्रभूमि पर मंडराते खतरे से विश्व की 40 प्रतिशत वनस्पतियों और जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। लिविंग प्लैनेट इंडेक्स की एक रिपोर्ट के आकड़ों के अनुसार 1970–2020 के बीच पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर जटिल अंतर्संबंधों और जीवमंडल और वायुमंडल के बीच नाजुक संतुलन के प्रति मानव जाति की उपेक्षा से समुद्री, स्थलीय और मीठे पानी के पारिस्थितिकी तंत्रों में जंगली कशेरुकी प्रजातियों में कुल मिलाकर 73 प्रतिशत की गिरावट आई है। मीठे पानी के पारिस्थितिक तंत्र, दबाव बढ़ने से सबसे अधिक सवेदनशील हैं। तापमान का बढ़ने और बांधों तथा अन्य अवसंरचना परियोजनाओं के चलते प्रवासी पक्षियों के मार्गों में अवरोध पैदा हो रहा है। जहाँ एशिया प्रशांत क्षेत्र में प्रजातियों की आबादी प्रतिवर्ष 1.8 प्रतिशत की दर से गिर रही है, वहीं सरीसृप जैसी आक्रामक प्रजातियों और बिमारियों का खतरा बढ़ता देखा गया है। आर्द्रभूमियों के संरक्षण और इसके बिगड़ते स्वरूप को संभालना न केवल पर्यावरण की सेहत के लिए, बल्कि मानव जाति के जीवन के लिए भी बेहद जरुरी है।

——००——

जैव विविधता

जैव विविधता का संकट : वैश्विक हानि और संरक्षण की पुकार

-प्रशांत सिन्हा

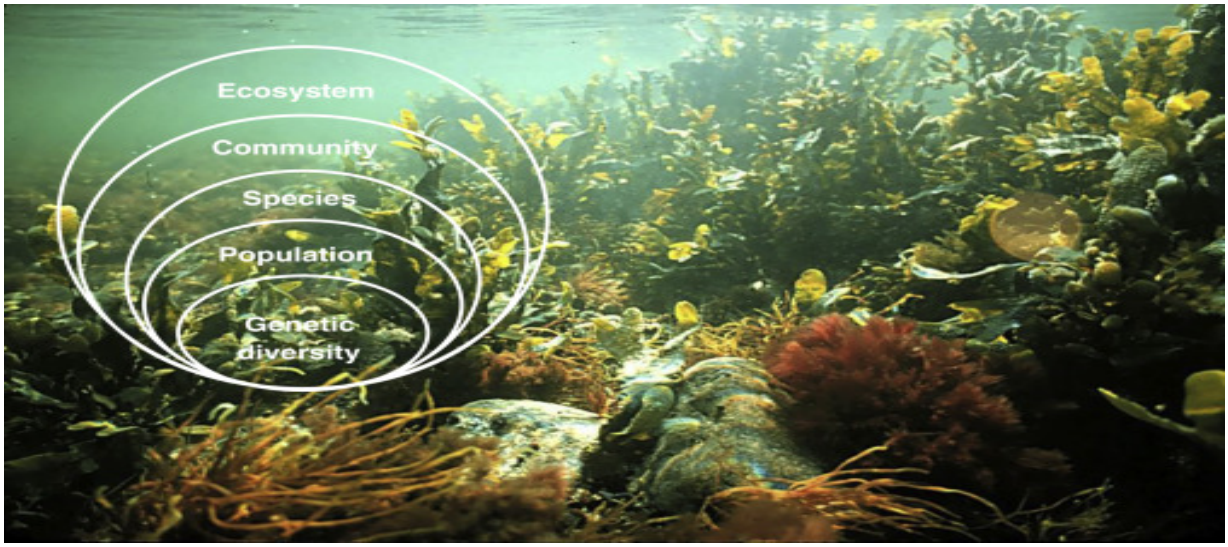
⟶ आज की तेजी से बदलती दुनिया में, जहां मानवीय गतिविधियां प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ रही हैं, जैव विविधता एक ऐसा अमूल्य खजाना है जो जीवन का आधार है। यह न केवल पेड़–पौधों, जीव–जंतुओं की विविधता को दर्शाता है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता को भी सुनिश्चित करता है। दुर्भाग्य से, वनों की कटाई, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसे कारकों से यह विविधता तेजी से लुप्त हो रही है, जो मानव अस्तित्व के लिए खतरा बन गई है। इस संदर्भ में, जैव विविधता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिकी कीट विज्ञानी ई.ओ. विल्सन द्वारा 1986 में 'अमेरिकन फोरम ऑन बायोलोजिकल डाइवर्सिटी' में प्रस्तुत रिपोर्ट में किया गया।

यह इन्फोग्राफिक की लिविंग प्लैनेट रिपोर्ट से प्रेरित है, जो वैश्विक वन्यजीव आबादी में 69 प्रतिशत की भयावह गिरावट को दर्शाता है।

जैव विविधता से आशय जीवधारियों (पादप जीवों) की विविधिता से है जो दुनिया भर में हर क्षेत्र, देश और महाद्वीप पर होती है। भारत में कुछ जीव जंतुओं की बात करें तो जैव विविधता पर दिसम्बर 2018 में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (सीबीडी) में पेश की गई। छठी राष्ट्रीय रिर्पोट से पता चला था कि ''अंतर्राष्ट्रीय रेड लिस्ट '' की गंभीर रुप से लुप्तप्राय और संकटग्रस्त श्रेणियों में भारतीय जीव प्रजातियों की सूची वर्षों से बढ़ रही है।

विश्व वन्यजीव कोष की लीविंग प्लेनेट रिर्पोट 2022 में खुलासा हुआ है कि दुनिया भर में पिछले 50 वर्षों में वन्य जीवों की आबादी 69 फीसदी कम हुई है। इनमे स्तनधारी, पक्षी, उभयचर, सरीसृप, मछलियां आदि शामिल हैं। हर दो साल में प्रकाशित होने वाली इस रिर्पोट के मुताबिक वैसे तो पूरी दुनिया में वन्य जीवों की आबादी तेजी से घट रही है लेकिन 1970 के बाद से लैटिन अमेरिका तथा कैरेबियाई क्षेत्रों में वन्य जीव आबादी में करीब 49 फीसदी तक की गिरावट आई है, जबकि अफ्रीका में 66 फीसदी और एशिया में 55





फीसदी गिरावट हुई है। मछली पकड़ने में 18 गुना वृद्धि के कारण मछलियों की संख्या में कमी हुई है जबकि ताजा पानी में रहने वाले प्रजातियों में सर्वाधिक 83 प्रतिशत की गिरावट दर्ज हुई है जो किसी भी प्रजाति की समूह की तुलना में सबसे बड़ी गिरावट है। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर (डब्ल्यू डब्ल्यू एफ एन) की रिपोर्ट से साफ है कि धरती पर मौजूद प्रजातियों की तादाद में दस में से सात का अस्तित्व समाप्त हो चूका है। भारत की हालत वैश्विक स्थिति से भिन्न नहीं है। यहां भी 12 फीसदी से अधिक जंगली स्तनधारियों, 3 फीसदी पक्षी प्रजातियों और 19 उभयचरों की प्रजातियों पर गंभीर खतरा है। एक अनुमान के अनुसार करीब तीस करोड़ प्रजातियां हो सकती है जिसमें 14 लाख 35 हजार 662 प्रजातियों की पहचान हुई है। उनमें 7 लाख 51 हजार कीट, 2 लाख 81 हजार जंतु, 68 हजार कवक, 26 हजार शैवाल, 4 हजार 800 जीवाणु तथा एक हजार विषाणु शमिल है। इसके अलावा 343 मछलियां, 50 जलथलचारी, 170 सरीसृप , 1355 अकशेरूकी, 1037 पक्षियों और 497 स्तनधारी की प्रजातियां भी हैं। हर साल पारितंत्रों के क्षरण के कारण 27 हजार प्रजातियां लुप्त हो रही है। इन लुप्त होती प्रजातियों को रोकने के लिए गंभीर प्रयास करने की आवश्यकता है अन्यथा परिणाम भयंकर होंगे। एक रिपोर्ट में बताया गया है कि वनों की कटाई, सभी प्रकार के प्रदूषण, औद्योगीकरण, शहरीकरण जलवायु संकट तथा विभिन्न बीमारियां इनका प्रमुख कारण हैं। डबल्यू डबल्यू एफ के महानिदेशक मार्को लैवर्टनी के अनुसार 'हम मानव प्रेरित जलवायु संकट व जैव विविधता के नुकसान की दोहरी आपात स्थिति का सामना कर रहे है जो वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए खतरा साबित हो सकती हैं।'

जैव विविधता प्रत्येक राष्ट्र की विरासत के स्वाभाविक रुप से महत्त्वपूर्ण रुप से महत्त्वपूर्ण पहलू के रुप में और एक उत्पादक, स्थायी संसाधन के रुप मे देखा जाना चाहिए, जिस पर हम सभी अपने वर्तमान और भविष्य के कल्याण के लिए निर्भर हैं। विकासशील और विकसित दोनों देशों में जैव विविधता की रक्षा के लिए तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता है। जैव विविधता पर अनुसंधान की निरंतर आवश्यकता है जो हमारे ज्ञान को बढ़ाता है, हमारी प्रबन्धन क्षमताओं में सुधार करता है और लोगों के साथ रहने के नए तरीकों के विकास की ओर ले जाता है। कुल मिलाकर, मानव कल्याण के लिए जैव विविधता के कई योगदान अधिक स्पष्ट होते जा रहे हैं। हम अपने द्वारा खाए जाने वाले भोजन, अपने कपड़े और निर्माण सामग्री को 'जैव विविधता' से जोड़ते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण संसाधन है जिसे निरंतर प्रबंधित करने और सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है, ताकि बदले में यह हमारी और ग्रह की रक्षा करे।

जैव विविधता का संरक्षण अब वैकल्पिक नहीं, बल्कि अनिवार्य आवश्यकता है। भारत जैसे जैव विविधता संपन्न देश में, जहां हजारों प्रजातियां खतरे में हैं, हमें व्यक्तिगत, सामुदायिक और वैश्विक स्तर पर प्रयास तेज करने होंगे– जैसे संरक्षित क्षेत्र बढ़ाना, सतत विकास अपनाना और जागरूकता अभियान चलाना। यदि हम आज कदम न उठाए, तो कल की पीढ़ियां एक निर्जन ग्रह पर रहने को मजबूर हो जाएंगी। आइए, हम सब मिलकर इस संकट से निपटें और पृथ्वी को हरा–भरा बनाए रखें।

–नई दिल्ली

जैव विविधता के क्षरण के लिए जिम्मेदार सड़कों की अवैज्ञानिक तकनीकी भी है

-गजेन्द्र दानू

⟶ गढ़वाल मंडल की हृदयस्थली श्रीनगर गढ़वाल से पौड़ी गढ़वाल तक की लगभग 29 किलोमीटर लंबी मोटर सड़क गढ़वाल हिमालय की एक महत्वपूर्ण सड़क संयोजक मार्ग है। यह मार्ग वर्तमान में अनेकों घुमावदार, संकरी और कई मोड़ों तथा बरसाती नालों यानी कि गाद –गधेरों(rainwater fed tributarie) से युक्त है, जिसके कारण सामान्यतः यात्रा में डेढ़ घंटे का समय लगता है। आजकल इस कई वर्ष पुरानी अमूमन कम भूस्खलन वाली सड़क पर चौड़ीकरण का कार्य किया जा रहा है। संभवतः वर्तमान चौड़ीकरण कार्य मुख्य रूप से इंजीनियरिंग सर्वे के आधार को ही मानक मान कर चल रहा है, लेकिन इसमें क्षेत्र की भूगर्भीय संरचना(geological structure),चट्टानों की प्रकृति, अंदरूनी संयुक्त–फ्रैक्चर, भ्रंश, नवनिर्मित चट्टानों के प्रकार व उनकी सुदृढ़ता, ढलान स्थिरता (slope stability) और जल प्रवाह की गतिशीलता को पर्याप्त रूप से ध्यान में नहीं रखा जा रहा है। इस ऐतिहासिक श्रीनगर–पौडी गढ़वाल की सड़क की तस्वीर सिर्फ चौड़ीकरण से ही नहीं बल्कि इसमें छोट–छोटे पुलों, डाट पुलियाओं और सुरक्षित ड्रेनेज सिस्टम से सुसज्जित घुमाव विहीन सीधी सड़क के निर्माण से ही बदलेगी।

गढ़वाल हिमालय क्षेत्र के इस रुट में फिलाइट्स, क्वार्जाइट्स, मैटावोल्केनिक्स और अन्य कई तरह की महीन वलय युक्त कमजोर चट्टानों वाली संरचना है, जो कि उच्च भूकंपीय जोन में स्थित हैं। पुरानी, सैटल्ड चट्टानों में अनियंत्रित कटान से मृदा भूस्खलन (landslides), जमी–जमाई चट्टानों के आधार का अचानक से हट जाने के कारण पूरे–पूरे पहाड़ का टूटना जैसी और भी दीर्घकालिक अस्थिरता बढ़ती जा सकती है। इस समस्या के प्राथमिक भू–वैज्ञानिक सुरक्षा के तौर पर एक सरसरी नजर में विश्लेषण करें तो हमें कुछ तथ्यों पर ध्यान अवश्य देना चाहिए। जैसे :–

चट्टानों की प्रकृति : क्षेत्र में श्रीनगर फिलाइट्स,नाइस आदि चांदपुर ग्रुप व गढ़वाल ग्रुप की चट्टानें प्रमुख रूप से अवस्थित हैं। ये चट्टानें कम भार क्षमता सहन करने वाली कमजोर और अत्यधिक मुड़ी हुई वलय युक्त, अनेकों महीन दरारों में बंटी हुई किन्तु अलग–अलग प्रकार और प्राकृतिक संरचना वाली आपस में सटकर जुड़ी हुई प्रकृति की नरम चट्टानें हैं। मानसून में पानी का अन्दुरूनी रिसाव (seepage) के कारण फिलाइट्स व इसी प्रकार की अन्य चट्टानों में फुलाव (swelling) पैदा हो जाता है, जिससे क्षेत्र विशेष की चट्टानों की ढलानों में अस्थिरता (slope instability) बढ़ती है और बड़े पैमाने पर भूस्खलन जैसी घटनाएं घटित हो जाती हैं।

भूस्खलन की संवेदनशीलता : सड़क निर्माण कार्य के दौरान चट्टानों की कटिंग करने से उनका ढलान कोंण (slope angle) बदलने, क्षेत्र विशेष के जंगलों की वनस्पतियां जो कि मृदा को मजबूती से जकड़ी हुई रहती है। (vegetation) हटाने और कटी हुई मिट्टी व चट्टानों के टूटे मलवे के ढेरों (debris &screa material) के जमा होने से भूमि पर अतिरिक्त दबाव के बढ़ने से भू–धंसाव की दर (landslide susceptibility) बढ़ जाती है और स्थिर भूमि भी भूस्खलन की चपेट में आ जाती है। आंकडों के आधार पर ऐसा माना जाता है कि गढ़वाल में सड़क परिवहन तंत्र के निर्माण के कारण 18–20 प्रतिशत तक भूस्खलन की घटनाएं बढ़ जाती हैं।

बरसाती नालों के मलवा युक्त जल प्रबन्धन के अभाव के चलते सड़क तंत्र प्रभावितः पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क परिवहन मार्गों के बरसाती नालों (seasonal streams &catchment area waterfed) से गुजरने की वजह से मलवा–युक्त पानी मार्ग पर आ जाता है। इन पर बिना उचित कलमठ (causeway), छोटी–छोटी पुलियाओं जैसी सुरक्षित, बरसाती नालों से अप्रभावित रहने वाली, संरचनाओं के अभाव में अक्सर सड़कें बंद हो जाती हैं। इनके निर्माण से घुमावदार सड़कें सीधी और समतल तो होती ही होती हैं, साथ ही इन जलधाराओं की टिकाऊ चट्टानों के न कटने से भूक्षरण भी नियंत्रित रहता है। जबकि इन जगहों की अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित चट्टानों को काटने से समतल भूमि के अन्दर और बाहर गहरा कटाव शुरू हो जाता है और मलवा गिरने की गति (erosion & debris flow) भी दोगुनी बढ़ जाती है।

घुमावदार डिजाइन के कुप्रभाव : वर्तमान स्थिति में निर्मित पर्वतीय क्षेत्रों की सड़कों का डिजाइन व alignment अत्यन्त घुमावदार मोड़ों के कारण असुरक्षित और सामान्य गति से चलने में भी बाधक है। यही वजह है कि इमरजेंसी की स्थिति में तेज गाड़ी चलाने में जोखिम के सिवाय कुछ भी नहीं है ।

अतः पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क निर्माण हेतु अनिवार्य रूप से भू–इंजीनियरिंग खाका का सिद्धांत यह होना ही चाहिए कि न्यूनतम चट्टानों की कटाई और स्थिर संरचनाओं वाली चट्टानों का अधिकतम उपयोग (minimum cutting and maximum use of naturally stable rock) करते हुए रास्ते में पड़ने वाले नदी नालों को बिना अनावश्यक छेड़छाड़ के यथासंभव उपयोग करना ,चट्टानों की उत्पत्ति, अपक्षय व क्षरण का प्रकार, भौतिक व रासायनिक संरचना, ढलानों का झुकाव कोंण आदि की गणनाओं का उपयोग करते हुए सड़कें निर्मित हों।

सड़क निर्माण के दौरान रास्ते में पड़ने वाले नदी नालों पर तथा बाढ़ की संरचना वाली जगहों पर पुल, कलमठ(culverts) जैसी वैकल्पिक संरचनाओं के रूप में ज्यादा टिकाऊ समाधान निकालने पर जोर दिया जाना चाहिए। साथ ही सड़क के किनारे लगे नदी नालों पर उगी वनस्पतियों, चट्टानों से किसी भी तरह की छेड़छाड़ से बचना चाहिए।

जहां चट्टानों की कटाई आवश्यक हो वहां स्टील की छड़ों व सीमेंट की डाट से ट्रीटमेंट (soil nailing rock bolting or cantilever retaining wall) आदि का उपयोग किया जाना चाहिए।

दीर्घकालिक सड़क सुरक्षा व आरामदायक स्थिति बनाए रखने के लिए लाभदायक उपादानों का उपयोग ज्यादा किया जाना चाहिए।

पर्याप्त सर्वेक्षण के उपरांत सड़क निर्माण के दौरान ही उचित ड्रेनेज सिस्टम, क्रांस ड्रेनेज सिस्टम का बेहतर निर्माण किया जाना चाहिए और मलवे से अवरूद्ध होने से रोकने के लिए निरंतर मेंटिनेंस हेतु सुरक्षित डिजाइन का प्रावधान भी अवश्य किया जाना चाहिए।

यदि उक्त उल्लेखित मानकों पर ध्यान केंद्रित कर सड़क निर्माण योजनाएं बनाई जाती हैं तो अपेक्षित लाभ के स्वरूप में चट्टानों के गिरने व भूस्खलन जैसी घटनाएं यदा–कदा ही घटित होंगी।

पहाड़ों के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ कम होने से जंगलों में बेहतर वनस्पतियां उगेंगी और जंगल सदाबहार वनों से आच्छादित रहेंगे जिससे



पारिस्थितिकी तंत्र में गुणात्मक सुधार होगा।

पर्यटन और आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो बेहतर और कम रोड ब्लॉक के चलते पर्यटन बढ़ेगा और स्थानीय लोगों को आर्थिक लाभ मिलने की संभावनाएं भी बढ़ जायेंगी और सड़कों पर हर साल होने वाले अतिरिक्त व्यय भार में भी कमी आ जायेगी।

यहां पर स्थानीय ग्रामीणों और श्रीनगर–पौड़ी के मध्य प्रत्येक दिन सुबह–शाम आवाजाही करने वाले राहगीरों, कर्मचारियों आदि के संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि डोभ श्रीकोट गांव पौड़ी जिला मुख्यालय से मात्र 09 किमी तथा खण्डा श्रीकोट गांव 18 किमी की दूरी पर स्थित है और पौड़ी–श्रीनगर जाने वाले मुख्य मार्ग पर ही स्थित है। इसके आलावा इनके मध्य की प्रमुख ग्राम सभाएं मल्ली, गडोली तथा खण्डा गधेरे के पास वाले पौड़ी और खिर्सू विकास खण्ड के दर्जनों गांव के ग्रामीणों का भी यही मार्ग दैनिक यातायात का एकमात्र विकल्प है। अनायास ही एक दिन बस में यात्रा के दौरान जब बस परिचालक द्वारा इन कम दूरी तय करने वाले स्थानीय ग्रामीण राहगीरों को कड़े लहजे में बस की सीटें श्रीनगर जाने वाले यात्रियों के लिए खाली करने को कहा गया तो डोभ श्रीकोट निवासी 72 वर्षीय लाठी थामे बुजुर्ग महिला श्रीमती भवानी देवी व अन्य ने अपना दुःख मुझसे व्यक्त किया और आशा भरी उम्मीद में बताया कि आप हमारी इस परेशानी को जिलाधिकारी महोदया पौड़ी को लिखकर भेज दो क्योंकि आप पढ़े–लिखे हैं, हम नहीं लिख सकते।

ग्रामीणों ने बताया कि इस मार्ग पर चलने वाली गाड़ियां हमेशा खचाखच भरी रहती हैं, हमें व्यक्तिगत कार्यों के निदान हेतु पौड़ी जिला मुख्यालय तक आना–जाना पड़ता है। स्थानीय लोग, स्कूल जाने वाले बच्चे, महिलाएं, बुजुर्ग और बीमार व्यक्ति पौड़ी आने जाने में बहुत कठिनाई का सामना करते हैं। अधिकतर समय उन्हें खड़े होकर यात्रा करनी पड़ती है जो खासकर महिलाओं, बच्चों व असहाय बीमार बुजुर्गों के लिए अत्यंत जोखिमपूर्ण और कष्टदायक है। मैंने एक सामान्य नागरिक के नाते उनकी इस परेशानी को जिलाधिकारी पौड़ी गढ़वाल को ग्रामीणों के द्वारा सिटी बस सेवा शुरू करने हेतु एक निवेदन पत्र के रूप में लिखकर भेजा भी है।

किन्तु स्थानीय ग्रामीणों की सिटी बस सेवा उपलब्ध करवाने की मांग सड़क चौड़ीकरण और मेरे द्वारा दिए गए सड़क निर्माण सम्बन्धी सुझाओं पर ध्यान केंद्रित करने से संभव अवश्य है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह मार्ग केवल एक सड़क मार्ग नहीं है, बल्कि हिमालयी भौगोलिक परिस्थितियों, पारिस्थितिकी व आर्थिक गतिविधियों के संतुलन को बनाए रखने के लिए और स्थानीय जन समुदाय की जीवनधारा की सार्थकता भी इसी के सहारे कायम है। वर्तमान में चट्टानों व वृक्षों की अंधाधुंध कटाई भविष्य में बड़ी आपदा का कारण बन सकती है। भू–वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित पुलों आदि के निर्माण के चलते हम एक सुरक्षित, आधुनिक और विकसित संसाधनों से परिपूर्ण सड़क बना सकते हैं। यदि स्थानीय लोगों के द्वारा अपने जनप्रतिनिधियों, मंत्रीगणों और सरकार से समय रहते आवाज उठाई गई तो यह निर्माणाधीन सड़क एक नये बेहतर स्वरूप में परिवर्तित हो सकती है।

भू–विज्ञान ज्ञाता।
उत्तराखण्ड



जैव विविधता

छठे महाविनाश की आहट: विलुप्त होती प्रजातियां और मानव सभ्यता का भविष्य

-डॉ.रामानुज पाठक

⟶ पृथ्वी पर जीवन का इतिहास लगभग 3.8 अरब वर्ष पुराना माना जाता है। इस दीर्घकालिक विकास यात्रा में असंख्य प्रजातियाँ उत्पन्न हुईं, विकसित हुईं और फिर प्राकृतिक कारणों से विलुप्त भी हो गईं। प्रकृति में जन्म और विलुप्ति का यह क्रम एक सामान्य जैविक प्रक्रिया है, किंतु पृथ्वी के इतिहास में कुछ ऐसे कालखंड भी आए हैं जब अपेक्षाकृत कम समय में बड़ी संख्या में जीव प्रजातियाँ नष्ट हो गईं। वैज्ञानिक इन्हें ''महाविनाश'' या मास एक्सटिंक्शन कहते हैं। अब तक पृथ्वी पाँच महाविनाशों का अनुभव कर चुकी है। लगभग 6.6 करोड़ वर्ष पूर्व घटित पाँचवें महाविनाश में डायनासोर सहित पृथ्वी की लगभग 75 प्रतिशत प्रजातियाँ समाप्त हो गई थीं। आज विश्वभर के जीवविज्ञानी, पारिस्थितिकीविद् और जलवायु वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि पृथ्वी एक बार फिर ऐसे ही संकट के दौर में प्रवेश कर रही है। अंतर केवल इतना है कि इस बार किसी उल्कापिंड, ज्वालामुखी या प्राकृतिक आपदा के बजाय इसका सबसे बड़ा कारण स्वयं मनुष्य है। यही कारण है कि वर्तमान जैव–विविधता संकट को ''छठा महाविनाश'' कहा जा रहा है।

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो किसी प्रजाति का विलुप्त होना तब माना जाता है जब उसका अंतिम जीवित सदस्य भी समाप्त हो जाए। सामान्य परिस्थितियों में यह प्रक्रिया अत्यंत धीमी होती है। जीवाश्म अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राकृतिक परिस्थितियों में प्रति दस लाख प्रजातियों में प्रतिवर्ष केवल एक या दो प्रजातियाँ विलुप्त होती हैं। इसे पृष्ठभूमि विलुप्ति दर कहा जाता है। किंतु आधुनिक अध्ययनों से पता चलता है कि वर्तमान समय में प्रजातियों के विलुप्त होने की दर प्राकृतिक दर की तुलना में दर्जनों से लेकर सैकड़ों गुना अधिक हो चुकी है। यह वृद्धि इतनी तीव्र है कि अनेक वैज्ञानिक इसे पृथ्वी के छठे महाविनाश की शुरुआत मानते हैं।

जैव–विविधता के क्षरण के संकेत केवल वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे हमारे चारों ओर स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं। कभी गाँवों और खेतों में सहज दिखाई देने वाली गौरैया आज अनेक क्षेत्रों से लगभग गायब हो चुकी है। गिद्धों की आबादी में पिछले कुछ दशकों में भारी गिरावट दर्ज की गई। विश्वभर में उभयचर जीवों, प्रवाल भित्तियों, कीटों, समुद्री जीवों और वन्य स्तनधारियों की संख्या तेजी से घट रही है। अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों के अनुसार पिछले पचास वर्षों में विश्व की निगरानी की गई वन्यजीव आबादियों के औसत आकार में लगभग 73 प्रतिशत की गिरावट आई है। यह केवल जीव–जंतुओं की संख्या में कमी का संकेत नहीं है, बल्कि पृथ्वी के पारिस्थितिकी संतुलन के कमजोर पड़ने का भी प्रमाण है।

प्रजातियों के विलुप्त होने के पीछे अनेक कारण कार्य कर रहे हैं, किंतु उनमें सबसे प्रमुख कारण प्राकृतिक आवासों का विनाश है। मानव जनसंख्या में वृद्धि के साथ–साथ कृषि विस्तार, शहरीकरण, औद्योगीकरण, सड़क निर्माण, खनन और आधारभूत संरचनाओं के विकास ने विशाल वन क्षेत्रों को समाप्त कर दिया है। जब किसी जीव का प्राकृतिक आवास नष्ट होता है, तब केवल उसका रहने का स्थान ही नहीं छिनता, बल्कि भोजन, प्रजनन और सुरक्षा की संपूर्ण व्यवस्था भी समाप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप अनेक प्रजातियाँ धीरे–धीरे विलुप्ति के कगार पर पहुँच जाती हैं।

जलवायु परिवर्तन ने इस संकट को और गंभीर बना दिया है। औद्योगिक क्रांति के बाद से वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा निरंतर बढ़ रही है, जिसके कारण वैश्विक तापमान में वृद्धि हो रही है। तापमान बढ़ने से हिमनद पिघल रहे हैं, समुद्र का स्तर बढ़ रहा है, वर्षा चक्र प्रभावित हो रहे हैं और पारिस्थितिकी तंत्रों का स्वरूप बदल रहा है। अनेक प्रजातियाँ अपने पारंपरिक आवासों में जीवित नहीं रह पा रही हैं। हिमालयी क्षेत्रों में पाए जाने वाले जीव ऊँचाई की ओर पलायन कर रहे हैं, जबकि समुद्री जीव महासागरों के गर्म होते जल से प्रभावित हो रहे हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि वैश्विक तापमान वृद्धि को नियंत्रित नहीं किया गया तो इस शताब्दी के अंत तक हजारों प्रजातियाँ स्थायी रूप से विलुप्त हो सकती हैं।

प्रदूषण भी जैव–विविधता के लिए गंभीर खतरा बन चुका है। नदियों, झीलों और समुद्रों में पहुँचने वाले औद्योगिक अपशिष्ट, प्लास्टिक कचरा, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक असंख्य जीवों के जीवन को

प्रभावित कर रहे हैं। समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों में सूक्ष्म प्लास्टिक कण खाद्य श्रृंखला का हिस्सा बन चुके हैं। कृषि में उपयोग होने वाले कुछ रसायनों ने मधुमक्खियों और अन्य परागणकर्ताओं की संख्या पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। यह स्थिति केवल जैव–विविधता के लिए ही नहीं, बल्कि वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए भी चिंता का विषय है।

प्रजातियों के विलुप्त होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण अति–दोहन है। मनुष्य द्वारा भोजन, औषधि, लकड़ी, सजावटी वस्तुओं और व्यापारिक लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है। अवैध शिकार और वन्यजीव व्यापार के कारण अनेक दुर्लभ प्रजातियाँ संकटग्रस्त हो चुकी हैं। समुद्रों में अत्यधिक मत्स्य दोहन ने कई मछली प्रजातियों की आबादी को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। इसी प्रकार बाहरी या आक्रामक प्रजातियों का प्रसार भी स्थानीय जीवों के अस्तित्व के लिए खतरा बन रहा है। जब कोई बाहरी प्रजाति किसी नए क्षेत्र में प्रवेश करती है, तो वह स्थानीय जीवों के भोजन, आवास और संसाधनों पर अधिकार जमा लेती है, जिससे मूल प्रजातियों का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है।

बहुत से लोग यह मानते हैं कि किसी जीव का विलुप्त होना केवल पर्यावरण प्रेमियों या वैज्ञानिकों की चिंता का विषय है, किंतु वास्तविकता इससे कहीं अधिक व्यापक है। पृथ्वी का संपूर्ण जीवन तंत्र एक जटिल जाल की तरह कार्य करता है, जिसमें प्रत्येक जीव की अपनी भूमिका होती है। मधुमक्खियाँ और तितलियाँ परागण का कार्य करती हैं, गिद्ध मृत जीवों को साफ कर रोगों के प्रसार को रोकते हैं, केंचुए मिट्टी की उर्वरता बनाए रखते हैं और वन कार्बन का अवशोषण कर जलवायु संतुलन में योगदान देते हैं। यदि इन जीवों की संख्या घटती है तो इसका प्रभाव अंततः मानव जीवन पर भी पड़ता है।प्रजातियों के विलुप्त होने के प्रभाव केवल जंगलों और वन्यजीवों तक सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि मानव सभ्यता के हर क्षेत्र को प्रभावित करेंगे। सबसे पहला प्रभाव खाद्य सुरक्षा पर पड़ेगा। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार विश्व की लगभग 75 प्रतिशत खाद्य फसलें किसी न किसी स्तर पर परागण करने वाले जीवों पर निर्भर हैं। यदि मधुमक्खियों, तितलियों और अन्य परागणकर्ताओं की संख्या लगातार घटती रही तो फलों, सब्जियों और तिलहनी फसलों के उत्पादन में भारी कमी आ सकती है। इसी प्रकार जैव–विविधता के क्षरण से कृषि कीटों और रोगों के प्रति फसलों की संवेदनशीलता बढ़ेगी, जिससे खाद्यान्न संकट की संभावना बढ़ सकती है।

दूसरा गंभीर प्रभाव जलवायु पर पड़ेगा। वन, घासभूमियाँ, आर्द्रभूमियाँ और महासागर पृथ्वी के प्राकृतिक कार्बन सिंक हैं, जो वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करके जलवायु संतुलन बनाए रखते हैं। जब जैव–विविधता घटती है तो इन पारिस्थितिक तंत्रों की कार्बन अवशोषण क्षमता भी कम हो जाती है, परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान वृद्धि की गति और तेज हो सकती है। यह एक दुष्चक्र उत्पन्न करेगा जिसमें जलवायु परिवर्तन जैव–विविधता को नष्ट करेगा और जैव–विविधता का ह्रास जलवायु परिवर्तन को और बढ़ाएगा।



जल संसाधनों पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा। वनस्पतियाँ और प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र वर्षा चक्र, भूजल पुनर्भरण तथा जल शुद्धिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जैव–विविधता में कमी आने पर नदियों का प्रवाह, जल की गुणवत्ता और जल उपलब्धता प्रभावित होगी। भविष्य में जल संकट और अधिक गंभीर हो सकता है।

मानव स्वास्थ्य भी इससे अछूता नहीं रहेगा। आधुनिक चिकित्सा में प्रयुक्त अनेक औषधियाँ पौधों, कवकों, समुद्री जीवों और सूक्ष्मजीवों से प्राप्त होती हैं। यदि ये प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती हैं तो भविष्य की अनेक संभावित जीवनरक्षक दवाओं के स्रोत समाप्त हो सकते हैं। साथ ही जैव–विविधता के ह्रास से पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ने पर संक्रामक रोगों और महामारियों का खतरा भी बढ़ जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि प्राकृतिक आवासों के विनाश से मनुष्य और वन्यजीवों के बीच संपर्क बढ़ता है, जिससे नए रोगजनकों के मानव समाज में प्रवेश की संभावना बढ़ जाती है।

आर्थिक दृष्टि से भी इसके दूरगामी परिणाम होंगे। वैश्विक अर्थव्यवस्था का एकबड़ा भाग कृषि, मत्स्य पालन, वानिकी, औषधि उद्योग और पर्यटन जैसे क्षेत्रों पर निर्भर है, जिनका आधार जैव–विविधता ही है। यदि प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण जारी रहा तो रोजगार, उत्पादन और आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। विश्व बैंक के अनुसार पारिस्थितिकी तंत्रों के ह्रास से आने वाले दशकों में वैश्विक अर्थव्यवस्था को खरबों डॉलर का नुकसान हो सकता है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जैव विविधता का ह्रास पृथ्वी की पारिस्थितिकी स्थिरता को कमजोर कर देगा। प्रत्येक प्रजाति प्रकृति के विशाल तंत्र की एक कड़ी है। जब एक–एक करके ये कड़ियाँ टूटती हैं तो अंततः पूरा तंत्र अस्थिर हो जाता है। परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, जंगल की आग, रोग प्रकोप और अन्य पर्यावरणीय आपदाएँ अधिक तीव्र और बार–बार होने लगती हैं। इसलिए छठा महाविनाश केवल जीव–जंतुओं के अस्तित्व का संकट नहीं है, बल्कि मानव सभ्यता, अर्थव्यवस्था, स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा और पृथ्वी की जीवन–समर्थन प्रणाली के भविष्य का भी संकट है।

जैव–विविधता और मानव स्वास्थ्य के बीच भी गहरा संबंध है। अनेक आधुनिक औषधियाँ पौधों, सूक्ष्मजीवों और अन्य जीवों से प्राप्त यौगिकों पर आधारित हैं। यदि प्रजातियाँ विलुप्त होती रहीं तो भविष्य की अनेक संभावित औषधियों के स्रोत भी समाप्त हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आवासों के विनाश और वन्यजीवों के साथ बढ़ते संपर्क के कारण जूनोटिक रोगों का खतरा भी बढ़ता है। हाल के वर्षों में वैश्विक स्तर पर उभरी महामारियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रकृति के साथ असंतुलित हस्तक्षेप अंततः मानव स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है।

भारत के संदर्भ में यह विषय विशेष महत्व रखता है। विश्व के कुल भूभाग का लगभग 2.4 प्रतिशत क्षेत्र रखने वाला भारत विश्व की लगभग 8 प्रतिशत ज्ञात प्रजातियों का घर है। हिमालय, पश्चिमी घाट, सुंदरवन, पूर्वोत्तर भारत और अंडमान–निकोबार जैसे क्षेत्र वैश्विक जैव–विविधता हॉटस्पॉट माने जाते हैं। किंतु बढ़ता शहरीकरण, वनों का क्षरण, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन इन अमूल्य पारिस्थितिक संपदाओं पर निरंतर दबाव बढ़ा रहे हैं। यद्यपि बाघ, एक सींग वाले गैंडे और मगरमच्छ जैसी कुछ प्रजातियों के संरक्षण में उल्लेखनीय सफलता मिली है, फिर भी हजारों कम चर्चित प्रजातियाँ आज भी गंभीर संकट का सामना कर रही हैं।

छठे महाविनाश की चर्चा केवल भय उत्पन्न करने के लिए नहीं है, बल्कि यह चेतावनी देने के लिए है कि अभी भी स्थिति को सुधारा जा सकता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि प्राकृतिक आवासों का संरक्षण किया जाए, वनों का पुनर्स्थापन हो, प्रदूषण कम किया जाए, टिकाऊ कृषि पद्धतियाँ अपनाई जाएँ, जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने के लिए ठोस कदम उठाए जाएँ और स्थानीय समुदायों को संरक्षण प्रयासों में सहभागी बनाया जाए, तो जैव–विविधता के क्षरण की गति को धीमा किया जा सकता है। संरक्षण केवल सरकारों या वैज्ञानिक संस्थानों का दायित्व नहीं है, यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदारी है।

पृथ्वी पर जीवन की विविधता करोड़ों वर्षों के विकास का परिणाम है। एक बार कोई प्रजाति विलुप्त हो जाए तो उसे पुनः वापस लाना लगभग असंभव होता है। हम केवल जीवों को नहीं खो रहे, बल्कि उन पारिस्थितिकी सेवाओं, जैविक संभावनाओं और प्राकृतिक विरासत को भी खो रहे हैं जिन पर मानव सभ्यता की नींव टिकी हुई है। इसलिए प्रजातियों का संरक्षण किसी एक जीव, वन या नदी को बचाने का प्रयास नहीं, बल्कि मानवता के भविष्य को सुरक्षित रखने का अभियान है। छठे महाविनाश की आहट अब स्पष्ट सुनाई दे रही है। प्रश्न यह नहीं है कि संकट आ रहा है या नहीं, बल्कि यह है कि क्या हम समय रहते प्रकृति के इस मौन चेतावनी–संदेश को समझ पाएँगे।

सतना, म0प्र0

जैव विविधता

हाथियों की विरासत : जैव विविधता और पर्यावरण का अनमोल हिस्सा

-सुनील कुमार महला

पृथ्वी के सबसे बुद्धिमान, विशालकाय और सामाजिक जीवों में से एक हाथी को 'पारिस्थितिकी तंत्र का इंजीनियर' कहा जाता है। इनके संरक्षण के प्रति जागरूकता फैलाने और इनके घटते अस्तित्व को बचाने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 16 अप्रैल को 'हाथी बचाओ दिवस' मनाया जाता है। यहां पाठकों को जानकारी देना चाहूंगा कि वर्तमान समय में हाथी अनेक गंभीर खतरों का सामना कर रहे हैं, जिनमें अवैध शिकार (विशेषकर हाथीदांत के लिए), वनों की कटाई, प्राकृतिक आवास का विनाश, मानव–हाथी संघर्ष तथा जलवायु परिवर्तन प्रमुख हैं। हाथी जंगलों, घासभूमियों और जल स्रोतों के संतुलन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, इसलिए उनका संरक्षण पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अनिवार्य है।

पाठकों को जानकारी देता चलूं कि हाथी पारिस्थितिकी तंत्र(इको–सिस्टम) को कई तरीकों से समृद्ध करते हैं।मसलन, वे फलों और पौधों को खाकर लंबी दूरी तय करते हैं और अपने मल(लीद) के माध्यम से बीजों का प्रसार करते हैं, जिससे नए पौधों का विकास होता है और वनों का विस्तार बना रहता है। घने जंगलों में चलते समय वे टहनियाँ और झाड़ियाँ तोड़ते हैं, जिससे वन का घनत्व कम होता है और सूर्य का प्रकाश जमीन तक पहुँचता है, जिससे छोटे पौधों और घास को बढ़ने का अवसर मिलता है और जैव विविधता बनी रहती है।

सूखे के समय हाथी अपनी सूंड और पैरों से जमीन खोदकर पानी निकालते हैं, जिससे बने गड्ढे अन्य जानवरों के लिए भी जल स्रोत बन जाते हैं। इसके अलावा हाथियों के चलने से प्राकृतिक मार्ग (कॉरिडोर) बनते हैं, जो अन्य जीवों की आवाजाही को सरल बनाते हैं। उनका मल मिट्टी को पोषक तत्व प्रदान कर उसे उर्वर बनाता है और पौधों की वृद्धि में सहायक होता है।

बहरहाल, यदि हम यहां पर हाथियों से संबंधित आंकड़ों की बात करें तो भारत में हाथियों की उपस्थिति मुख्य रूप से कर्नाटक, असम, केरल, तमिलनाडु और ओडिशा में पाई जाती है। प्रोजेक्ट एलिफेंट (2017) के अनुसार भारत में लगभग



29,000–30,000 जंगली हाथियों का अनुमान था, जबकि 2025 की नवीनतम डीएनए आधारित गणना के अनुसार इनकी संख्या लगभग 22,446 आंकी गई है।

डीएनए आधारित गणना का अर्थ है जानवरों की संख्या का अनुमान उनके आनुवंशिक पदार्थ (जेनेटिक मैटेरियल) के आधार पर लगाना, न कि केवल प्रत्यक्ष रूप से देखकर गिनना। विश्व में हाथियों की दो प्रमुख प्रजातियाँ पाई जाती हैं–अफ्रीकी हाथी जिनकी संख्या लगभग 4द्5 लाख है तथा एशियाई हाथी जिनकी संख्या लगभग 50,000–60,000 के बीच है। भारत विश्व के कुल एशियाई हाथियों का 60 प्रतिशत से अधिक हिस्सा रखता है।

हाल फिलहाल, यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि आज के समय में मानव–हाथी संघर्ष वर्तमान समय की एक गंभीर पर्यावरणीय और सामाजिक समस्या बन चुका है। इसका मुख्य कारण वनों का सिकुड़ना, कृषि विस्तार, मानव बस्तियों का बढ़ना और हाथियों के प्राकृतिक मार्गों (कॉरिडोर) का टूटना है।

इसके परिणामस्वरूप हर वर्ष औसतन 500 से अधिक लोगों की मृत्यु हाथियों के हमलों में होती है। वर्ष 2023–24 में यह संख्या बढ़कर 628 तक पहुँच गई, जो पिछले पाँच वर्षों में सबसे अधिक है। पिछले पाँच वर्षों में 2,800 से अधिक मानव मौतें दर्ज की गईं, जबकि वर्ष 2009–2024 के बीच लगभग 8,000 मानव मौतें हुई हैं। सबसे अधिक प्रभावित राज्य ओडिशा, झारखंड, पश्चिम बंगाल, असम और छत्तीसगढ़ हैं।

दूसरी ओर, हाथियों की मृत्यु भी मानव गतिविधियों के कारण बड़ी संख्या में हो रही है। पिछले 16 वर्षों में 1,653 हाथियों की मौत मानवजनित कारणों से हुई है, जिनमें लगभग 69 प्रतिशत मौतें बिजली के करंट से और लगभग 16 प्रतिशत रेल दुर्घटनाओं से हुई हैं।

पिछले पाँच वर्षों में 528 हाथियों की मौत दर्ज की गई है, जबकि प्रतिवर्ष औसतन 100 से अधिक हाथी मानव–हाथी संघर्ष में मारे जाते हैं। इसके अतिरिक्त अवैध शिकार, जहर देकर मारना तथा पटाखों या जहर मिले फलों से भी हाथियों की मृत्यु के मामले सामने आते रहे हैं। हाल ही में केरल में पटाखों से भरे फल खाने से हाथी की मृत्यु हुई तथा कर्नाटक में किसान की हाथी हमले में मृत्यु की घटना भी दर्ज की गई।

एक गंभीर घटना 20 दिसंबर 2025 को असम के होजाई जिले में हुई, जहाँ सैरंग–नई दिल्ली एक्सप्रेस गाड़ी तेज गति से गुजर रही थी और लगभग 100 हाथियों का झुंड रेलवे ट्रैक पार कर रहा था।

लोको पायलट द्वारा आपातकालीन ब्रेक लगाने के बावजूद ट्रेन नहीं रुक सकी और टक्कर हो गई, जिसमें 7 हाथियों की मौके पर तथा एक घायल हाथी की बाद में मृत्यु हो गई, इस प्रकार कुल 8 हाथियों की जान गई। यह घटना उस क्षेत्र में हुई जहाँ हाथियों का प्राकृतिक आवागमन रेलवे ट्रैक के पास से होता है, लेकिन सुरक्षा उपायों और चेतावनी प्रणालियों की कमी के चलते यह हुआ।

इस प्रकार भारत में जहाँ एक ओर मानव जीवन हाथियों के कारण प्रभावित हो रहा है, वहीं दूसरी ओर हाथी भी मानव गतिविधियों से गंभीर खतरे में हैं। यह स्थिति स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि जंगलों का संरक्षण, हाथी कॉरिडोर की सुरक्षा, सुरक्षित रेलवे और बिजली व्यवस्था, तकनीकी निगरानी (जैसे जीपीएस ट्रैकिंग और अलर्ट सिस्टम) तथा स्थानीय समुदायों की भागीदारी अत्यंत आवश्यक है, ताकि मानव और वन्यजीव दोनों के बीच संतुलन स्थापित किया जा सके और हमारा पारिस्थितिकी तंत्र व पर्यावरण सुरक्षित रह सके।

–फ्रीलांस राइटर, कॉलमिस्ट व युवा साहित्यकार,
पिथौरागढ़, उत्तराखंड।

यह लेख इंडियाक्लाइमेटचेंज.कॉम से साभार।



जैव विविधता

पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र का टूटता संतुलन और मानव सभ्यता पर बढ़ता अस्तित्व संकट

–डॉ. अजय सहाय

जलवायु परिवर्तन, अंधाधुंध वनों की कटाई, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, नदियों और समुद्रों में मानव–जनित कचरे का प्रवाह, भूजल का अत्यधिक दोहन, आक्रामक वनस्पतियों और जीवों का फैलाव, भूमि उपयोग में तीव्र परिवर्तन, समुद्री अम्लीकरण, झीलों–तालाबों का समाप्त होना ।

आर्द्रभूमियों का सिकुड़ना, पर्वतीय क्षेत्रों में सड़क कटान, खनन, बाँध निर्माण और अत्यधिक मानवीय दबाव जैसे कारणों ने पृथ्वी की जैव विविधता को अब तक के सबसे बड़े संकट यानी "छठे सामूहिक विलुप्ति काल" की ओर धकेल दिया है, जहाँ पृथ्वी पर विद्यमान ज्ञात–अज्ञात लगभग साढ़े आठ लाख प्रजातियों में से दस लाख प्रजातियाँ आगामी दशकों में समाप्ति के कगार पर पहुँच सकती हैं ।

वैश्विक वैज्ञानिक मंचों द्वारा निरंतर चेतावनी दी गई है कि पृथ्वी पर प्रजातियों के समाप्त होने की दर अब प्राकृतिक दर से हजार गुना अधिक हो चुकी है, जिसका अर्थ है कि मानव गतिविधियों ने पारिस्थितिकी तंत्र के उस संतुलन को तोड़ दिया है जो करोड़ों वर्ष में विकसित हुआ था ।

जैव विविधता का अर्थ केवल जीवों की संख्या नहीं है बल्कि वनस्पतियों, पक्षियों, जीव–जंतुओं, सूक्ष्मजीवों, मिट्टी में उपस्थित अदृश्य जीवों, परागण करने वाले कीटों, समुद्री जीवों, पर्वतीय जीवों, नदी–सरिता तंत्र में पाए जाने वाले जीवों और इनके बीच की परस्पर क्रियाओं का विशाल जाल है जिसे पारिस्थितिकी जाल कहा जाता है।

यदि इस जाल की एक भी कड़ी टूटती है तो इसका प्रभाव संपूर्ण प्रकृति, कृषि, भोजन, जल, जलवायु, वर्षा, रोग–प्रतिरोधक क्षमता, मानव स्वास्थ्य तथा अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। इसी संदर्भ में हाल के वैज्ञानिक अनुसंधान बताते हैं कि तापमान में वृद्धि, ऋतु चक्र में गड़बड़ी और वर्षा के असामान्य पैटर्न की वजह से परागण करने वाले जीव–विशेषकर मधुमक्खियाँ, तितलियाँ, भौंरे, पक्षी और चमगादड़ तेजी से संकट में आ रहे हैं।

विश्व के खाद्यान्न उत्पादन का लगभग पचहत्तर प्रतिशत परागण पर निर्भर है और यदि परागण करने वालों की संख्या घटती है तो पौधों का प्रजनन चक्र टूट जाता है, फल–फूल कम होते हैं, बीजों का निर्माण कम होता है, जिससे मानव खाद्य सुरक्षा पर भारी खतरा उत्पन्न हो सकता है।

भारत के वैज्ञानिक संस्थानों द्वारा किए गए अध्ययन बताते हैं कि बीते बीस वर्षों में देश की स्थानीय मधुमक्खी प्रजातियों में पचपन से साठ प्रतिशत तक गिरावट दर्ज की गई है। तापमान में मात्र एक डिग्री की वृद्धि से मधुमक्खियों की सक्रियता में पंद्रह से पच्चीस प्रतिशत तक कमी पाई गई है, फूलों के खिलने के समय में बारह से बीस दिनों तक परिवर्तन देखा गया है, तथा परागण का समय और फूलों का समय मेल नहीं खाता ।

इसे वैज्ञानिक भाषा में "ऋतु असंगति" कहा जाता है। इससे सरसों, सूरजमुखी, सब्जियों, फलों और नकदी फसलों का उत्पादन प्रभावित होता है और किसानों की आय कम होती है।

विश्व स्तर पर वन्य जीव जनसंख्या में पिछले पचास वर्षों में लगभग सत्तर प्रतिशत तक गिरावट दर्ज हुई है। मानव गतिविधियों के कारण पृथ्वी की भूमि का पचहत्तर प्रतिशत और समुद्री क्षेत्र का दो तिहाई हिस्सा अत्यधिक दबाव में आ चुका है। पर्वतीय क्षेत्रों में औसत तापमान बढ़ने से हिमालयी क्षेत्र में रहने वाली प्रजातियों के आवास तेजी से सिकुड़ रहे हैं।

वैज्ञानिक अनुमान बताते हैं कि इक्कीसवीं सदी के अंत तक हिमालय की लगभग चौथाई प्रजातियाँ अपने मूल आवास खो सकती हैं। समुद्री जल के तापमान में वृद्धि के कारण प्रवाल भित्तियों का तीव्र रंगहीन होना एक गंभीर संकेत है।

प्रवाल समुद्री जैव विविधता का पच्चीस प्रतिशत सहारा देते हैं, और इनके नष्ट होने से हजारों समुद्री प्रजातियों का जीवन संकट में पड़ सकता है। दुनिया की कई प्रसिद्ध प्रवाल भित्तियाँ लगातार रंगहीन हो रही हैं और 2024 तक वैश्विक स्तर पर लगभग एक तिहाई से अधिक प्रवाल दबाव में आ चुके हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण का प्रभाव भी जैव विविधता पर अत्यंत घातक है। प्रतिवर्ष करोड़ों टन प्लास्टिक समुद्रों में पहुँचता है, जिससे सात सौ से अधिक समुद्री प्रजातियाँ प्रभावित होती हैं। प्लास्टिक के सूक्ष्म कण हवा, पानी, वर्षा और भोजन तक में पाए जा रहे हैं और वैज्ञानिक अध्ययनों ने मानव रक्त, फेफड़ों तथा नवजात

शिशुओं के गर्भनाल में भी इन सूक्ष्म कणों का पता लगाया है।

भूमि प्रदूषण और रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी की जैव विविधता गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुई हैय लाभकारी जीवाणु, कृतक, केंचुए और फफूंद में चालीस से साठ प्रतिशत तक कमी पाई गई है, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की उपज क्षमता कम होती है, पानी धारण करने की क्षमता घटती है और फसलें सूखे व बाढ़ जैसी स्थितियों में अधिक प्रभावित होती हैं।

आक्रामक वनस्पतियों और जीवों का फैलाव भी एक बड़ा कारण है। लैंटाना, कुटकी, जलकुंभी, पर्नाला जैसी विदेशी आक्रामक वनस्पतियों ने भारत के कई जलस्रोतों और वन क्षेत्रों में स्थानीय प्रजातियों को पीछे धकेल दिया है। भारत में एक सौ से अधिक आक्रामक पौधे लगभग चालीस प्रतिशत प्राकृतिक आवासों को प्रभावित कर रहे हैं।

इसके कारण स्थानीय वनस्पतियाँ नष्ट होती हैं, मृदा की गुणवत्ता गिरती है और जलस्रोतों की स्वच्छता पर असर पड़ता है। समुद्र के बढ़ते स्तर के कारण सुंदरबन के मैंग्रोव वन प्रति वर्ष लगभग दो प्रतिशत की दर से सिकुड़ रहे हैं, जिससे दुर्लभ बंगाल बाघ सहित अनेक जीवों का प्राकृतिक आवास संकट में है।

भूजल दोहन के कारण तालाब, झीलें, नहरें, झरने और आर्द्रभूमियाँ सूख रही हैं, जिसके कारण मीठे पानी की मछलियों की लगभग अट्ठाईस प्रतिशत प्रजातियाँ संकटग्रस्त श्रेणी में पहुँच चुकी हैं। उभयचर जीवों—जैसे मेंढक और सलामेंडर में तीस प्रतिशत तक गिरावट पाई गई है, जो पारिस्थितिकी तंत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे कीट नियंत्रण, पोषक तत्व चक्रण और जल गुणवत्ता में सुधार लाते हैं। नदियों में बढ़ते रासायनिक प्रदूषक—जैसे भारी धातुएँ, गाद, नाइट्रेट, फॉस्फेट और जैव रासायनिक जलचरों को गंभीर खतरे में डालते हैं। भारत की प्रमुख नदियों में कई स्थानों पर मछलियों, कछुओं, डॉल्फिनों और जलपक्षियों की संख्या तेजी से घट रही है।

नदी तटों पर वृक्षों की कटाई से नदी का तापीय संतुलन बिगड़ता है, जल का ताप बढ़ता है, और इससे कई ताप—संवेदनशील जलचर प्रजातियाँ विलुप्ति के करीब पहुँच जाती हैं। आर्द्रभूमियों का विनाश जैव विविधता के लिए अत्यंत नुकसानदायक है क्योंकि ये क्षेत्र पक्षियों के प्रवास, मछलियों के प्रजनन और अनेक पौधों के जीवन चक्र के लिए अनिवार्य होते हैं।

भारत में 1950 के दशक में लगभग बीस लाख हेक्टेयर आर्द्रभूमि थी जो घटकर लगभग बारह लाख हेक्टेयर रह गई है। इससे लगभग पाँच सौ पक्षी प्रजातियाँ



प्रभावित हुई हैं।

यदि वैश्विक तापमान वृद्धि एक दशमलव पाँच डिग्री से ऊपर जाती है तो पृथ्वी की चौदह प्रतिशत स्थलीय प्रजातियाँ अपने आवास खो सकती हैं, और यदि तापमान दो डिग्री तक पहुँचता है तो लगभग बीस प्रतिशत प्रजातियाँ विलुप्त होने की उच्च जोखिम श्रेणी में आ जाएँगी।

वैज्ञानिक समुदाय ने चेताया है कि आगामी दशक "प्राकृतिक तंत्रों के निर्णायक बिंदुओं का दशक" होगा, जहाँ यदि अमेजन वर्षावन, आर्कटिक हिमखंड, पश्चिम अंटार्कटिक बर्फ चादर, मानसूनी प्रणाली, प्रवाल भित्तियाँ और हिमालयी हिमनद अपने संतुलन बिंदु से आगे निकल जाते हैं तो उन्हें पुनः सामान्य अवस्था में लाना लगभग असंभव हो जाएगा।

जैव विविधता का आर्थिक महत्व अत्यंत विशाल है। प्रकृति द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं—जैसे हवा की शुद्धि, जल शुद्धि, परागण, मिट्टी निर्माण, कार्बन अवशोषण, प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा, भोजन उत्पादन का वैश्विक मूल्य विश्व की कुल वार्षिक आर्थिक उत्पादकता के लगभग दोगुने के बराबर आँका गया है। यदि जैव विविधता नष्ट होती है तो मानव जीवन, कृषि, उद्योग और स्वास्थ्य प्रणाली सब पर गहरा आघात होगा।

इसीलिए विश्वभर में प्रकृति पुनर्जीवन का दशक, तीस—तीस लक्ष्य (जिसमें वर्ष 2030 तक पृथ्वी के तीस प्रतिशत भूभाग और तीस प्रतिशत समुद्री क्षेत्र को संरक्षण में लेने का संकल्प है), पारिस्थितिकी तंत्र पुनर्स्थापन कार्यक्रम, प्रजाति संरक्षण अभियान, स्वच्छता अभियान, प्लास्टिक उन्मूलन, प्रदूषण नियंत्रण, वन विस्तार, आर्द्रभूमि पुनर्जीवन, समुदाय आधारित संरक्षण, विद्यालय आधारित प्रकृति शिक्षा और प्रकृति—आधारित समाधान लागू किए जा रहे हैं।

भारत में भी जीवन शैली परिवर्तन अभियान, राष्ट्रीय जैव विविधता मिशन, जल संरक्षण कार्यक्रम, वन महोत्सव, जैव विविधता प्रबंधन समितियाँ, आर्द्रभूमि संरक्षण नियम, भूजल पुनर्भरण कार्यक्रम, नदी पुनर्जीवन अभियान तथा राज्य स्तरीय जल—वन संरक्षण योजनाएँ इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

आगे बढ़ते हुए, वर्ष 2047 का भारत तभी सुरक्षित, समृद्ध, जलवायु—लचीला और प्रकृति—संतुलित बनेगा जब जल, जंगल और जमीन के पारिस्थितिकी संतुलन को राष्ट्रीय प्राथमिकता दी जाए, बच्चों और युवाओं को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाया जाए, गाँव—शहर में स्थानीय स्तर पर पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा को जनभागीदारी से जोड़ा जाए ।

वैज्ञानिक निगरानी व्यवस्था—जैसे उपग्रह आँकड़ों, स्थल सर्वेक्षण, समुदाय आधारित अवलोकन को मजबूत किया जाए, वनों और आर्द्रभूमियों के विस्तार को बढ़ावा दिया जाए, नदी तटों को सुरक्षित किया जाए, प्रदूषण को नियंत्रित किया जाए और मानव विकास को प्रकृति के अनुकूल बनाया जाएय क्योंकि जैव विविधता जितनी सुरक्षित होगी, मानव जीवन उतना ही सुरक्षित, स्थायी और समृद्ध होगा और यही आने वाले भारत का सच्चा पर्यावरणीय विजन है।

जल प्रहरी, बिहार



जैव विविधता

बलिया की जैव विविधता: संकट, संरक्षण एवं संवर्द्धन

-डॉ. अनिल कुमार तिवारी [1]
-डॉ. गणेश कुमार पाठक [2]

⟶ जैवविविधता से आशय पृथ्वी तल पर पाए जाने वाली सभी प्रजाति के जीव–जंतुओं, वनस्पतियों, सूक्ष्म जीवों एवं इनके प्राकृतिक आवास में पायी जाने वाली विविधता से है। यही विविधता प्रकृति एवं जीवन की पूर्णता एवं स्थिरता का उचित एवं आवश्यक आधार भी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जैव विविधता ही सृष्टि में जीवन का मूलाधार है तथा इसके संरक्षित रहने से ही पर्यावरण एवं मानव सभ्यता के लंबी अवधि तक कल्पना की जा सकती है। यह विविधता ही प्रकृति की समृद्धि एवं संतुलन का प्रतीक है। रोचक तथ्य है कि प्रत्येक जीव प्रजाति की अपनी पारिस्थितिकी होती है, प्रत्येक पारिस्थितिकी का अपना तंत्र होता है, प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र की अपनी जैव विविधता होती है। यह विविधता केवल उस क्षेत्र में पाए जाने वाले जीव प्रजातियों की संख्या को ही नहीं प्रकट करती, बल्कि उनके बीच के संबंधों और पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता को भी बताती है, जो उस क्षेत्र विशेष की जलवायु एवं भौगोलिक परिवेश पर निर्भर करती है। जैव विविधता के तीन स्तर होते हैं–अनुवांशिकी विविधता, प्रजातीय विविधता एवं पारिस्थितिकी विविधता। इसमें एक स्तर की विविधता में हुई ह्रास एवं वृद्धि से अन्य स्तर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कहा जाता है कि जितनी समृद्ध जैव विविधता होगी, उतना ही वह पारिस्थितिकी तंत्र टिकाऊ, संतुलित, क्रियाशील एवं उच्च उत्पादन क्षमतायुक्त होगा।

उद्विकास की दृष्टि से देखें तो लगभग 3.5 अरब से 4.6 अरब वर्ष पहले पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। हमारे धर्म ग्रंथो यथा–विष्णु पुराण के विष्णु दशावतार तथा आधुनिक जगत के प्रसिद्ध जीव विज्ञानी चार्ल्स डार्विन के 'प्रजातियों की उत्पत्ति' के अनुसार यह प्रथम जीव जल अथवा जलयुक्त कीचड़ में उद्भवित हुआ। उद्विकास का संबंध जीवित कायों की अपने वातावरण के परिवर्तनों से तालमेल बैठाने की क्षमता से है। पृथ्वी के धरातलीय एवं महासागरीय जलवायु तथा वायुमंडलीय उथल–पुथल से युक्त पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास में इस पर विद्यमान जंतु व वनस्पति जगत भी परिवर्तित होते रहे हैं। परिवर्तन के क्रम में पुरानी प्रजातियों के स्थान पर नई प्रजातियां आती रही, स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा और जीवों की प्रजातियों की संख्या बढ़ती रही तथा जैव विविधता समृद्ध होती रही। अतः आज लगभग 1.5 मिलियन प्रजातियों की पहचान हो चुकी है, फिर भी अनुमान है कि यह संख्या 1.5 मिलियन से 20 मिलियन तक संभव है। अभी भी अधिकांश प्रजतिओं की खोज वैज्ञानिकों द्वारा जारी है।

जैव विविधता की उपयोगिता

जैव विविधता से पारिस्थितिकी के खाद्य श्रृंखला, पोषण स्तर, पोषण चक्र तथा पारिस्थितिक तंत्र में संतुलन बना रहता है। जीवन हेतु हमें भोजन, औषधि, ईंधन, वस्त्र, आवास, शुद्ध हवा एवं शुद्ध जल की प्राप्ति इन्हीं जैव विविधता से संभव है। कृषि, वानिकी, पशुपालन, मत्स्यन एवं पर्यटन आदि प्रकृति आधारित क्रियाएं जैव विविधता पर ही निर्भर करती हैं। जैव विविधता को औषधि कोष, जलवायु नियामक व सौंदर्य एवं मनोरंजन प्रदाता भी माना जाता है। अतः इसके उत्पादक मूल्यों, सामाजिक– सांस्कृतिक मूल्यों, सौंदर्यात्मक मूल्यों सहित अन्य वैकल्पिक मूल्यों का संरक्षण व संवर्द्धन अति आवश्यक है।

हमारा देश भारत विश्व के उन 17 जैव विविधता संपन्न देशों की श्रेणी में आता है, जहां विश्व की लगभग सभी प्रकार की जलवायु दशाएं, भौगोलिक परिस्थितियां एवं असंख्य विविधता लिए हुए प्रचुर पारिस्थितिक तंत्र विद्यमान हैं, जो इसे समृद्धि जैव विविधता युक्त इकाई बनाते हैं। भारत के प्रमुख पारिस्थितिकी क्षेत्र–हिमालय क्षेत्र, उत्तर पश्चिमी मरुस्थलीय क्षेत्र, गंगा का बेसिन, प्रायद्वीपीय भाग, पश्चिमी घाट (शांत घाटी सहित), पूर्वी घाट, तटीय क्षेत्र, पूर्वोत्तर क्षेत्र एवं द्वीपीय भाग हैं, जहां विश्व की कुल जनसंख्या का 17 प्रतिशत से अधिक भाग रहता है, वहां भी यह उच्च जैव विविधता सम्पन्न है। यहां विश्व के लगभग 36 जैव विविधता हॉट स्पॉट में से चार हॉट स्पॉट मौजूद हैं। हॉटस्पॉट ऐसे क्षेत्र होते हैं जहां सभी जंतुओं एवं पौधों की अत्यधिक सघनता एवं जैव विविधता में प्रचुरता पाई जाती है, इसलिए यह विशेष संरक्षित क्षेत्र होते हैं। यह प्रचुर जैव विविधता हमारी प्राकृतिक व सांस्कृतिक धरोहर है, जिसके

संरक्षण में ही हमारी धारणीय प्रगति निहित है।

भारत का सर्वाधिक आबादी व कृषि संपन्न राज्य उत्तर प्रदेश, जो हिमालय पारिस्थितिक क्षेत्र की तलहटी से शुरू होकर गंगा के मैदानी भाग में विस्तारित होते हुए उत्तर पश्चिमी मरुस्थलीय पारिस्थितिकी क्षेत्र तक फैला है, देश की बड़ी नदियों द्वारा सघन सिंचित है, जहां इसकी जैव विविधता की संपन्नता एवं संकट को देखते हुए इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु 25 वन्य जीव अभ्यारण्य एवं 13 रामसर स्थल मौजूद हैं। यह अभ्यारण्य वानस्पतिक क्षेत्रों, वन्यजीवों एवं आर्द्र व नमभूमियों के पारिस्थितिकी तंत्र की संवर्द्धन में कार्यशील हैं। इस प्रदेश में शिवालिक श्रेणी के दक्षिण से भाबर एवं तराई जैसे अघोषित जैव विविधता हॉटस्पॉट, सघन कृषि युक्त मैदानी भाग, ऊसर भूमि बुंदेलखंड, विंध्याचल के पठारी–पर्वतीय क्षेत्र के साथ–साथ गंगा के मध्य व निम्न (निचला) मैदान अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ प्रचुर जैव विविधता को प्रदर्शित करते हैं। इसके पूर्वी क्षेत्र में बड़ी नदियों गंगा एवं घाघरा के सघन दियारों एवं दोआबों की अपनी अलग पारिस्थितिकीय विशेषता एवं जैव विविधता है।

बलिया की जैव विविधता

भूगोलवेत्ताओं ने गंगा के निम्न मैदान (निचला मैदान) की शुरुआत बलिया जनपद के जिला मुख्यालय बलिया नगर के पूरब से माना है। अपनी विशेषतानुरूप निचले मैदान की सभी विशेषताएं, जैसे–नदी मोड़, छाड़न झीलें, प्राकृतिक तटबंध, बाढ़ के मैदान आदि यहीं से गंगा नदी एवं घाघरा नदी दोनों में प्रकट होने लगते हैं, जो इस जनपद को जैव विविधता के क्षेत्र में अलग पहचान देते हैं। जहां तक बलिया परिक्षेत्र में जैव विविधता का प्रश्न है तो यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही जैव विविधता संपन्न रहा है। पूर्व में यह भृगुक्षेत्र सघन वनों से आच्छादित था, जिसे पौराणिक रूप से दो क्षेत्रों यथा, धर्मारण्य क्षेत्र एवं अभ्यारण्य क्षेत्र में विभक्त किया जाता है। धर्मारण्य क्षेत्र सघन वन के भीतर वे खुले हुए वन क्षेत्र थे, जहां ऋषि– मुनियों के आश्रम एवं तपस्या स्थल थे। इसी प्रकार धर्मारण्य क्षेत्र के चतुर्दिक सघन वनावरण क्षेत्र, जहां विविधता लिए हुए पादप एवं जीव–जंतु के प्रजातियों की भरमार थी, उन्हें अभ्यारण्य क्षेत्र कहा गया। प्राकृतिक आपदाओं एवं मानवीय प्रगति की बढ़ती प्रवृत्ति से विकास की होड़ में यहां का प्राकृतिक स्वरूप ही बदल गया और आज यहां वन क्षेत्र का पूर्णतः अभाव पाया जाता है, परंतु आज भी जैव विविधता की विशेषताएं कायम हैं।

उच्चावच एवं जैव विविधता

संपूर्ण बलिया जनपद को उसके उच्चावच के आधार पर बांगर क्षेत्र एवं खादर क्षेत्र में बांटा जाता है। बांगर क्षेत्र वह क्षेत्र है जो नदी द्वारा निर्मित बाढ़ का मैदान तो है परंतु अब बाढ़ का पानी यहां नहीं पहुंचता, इसे उच्च भूमि के नाम से भी जाना जाता है। वहीं प्रतिवर्ष आज भी जहां बाढ़ का पानी पहुंच जाता है, ऐसे बाढ़ के उपजाऊ नवीन एवं निचले मैदान को खादर क्षेत्र कहते हैं, जिसमें गंगा, घाघरा एवं छोटी नदियों के दियार तथा कई छोटे बड़े दोआब क्षेत्र शामिल हैं। इसी उच्चावच के अनुरूप इस जनपद में वनस्पतियों की सघनता, वनस्पतियों के प्रकार, वन्य जीवों के प्राकृतिक आवास, नम एवं आर्द्र भूमियां तथा अन्य जलाशय एवं झुरमुट जैसी जैव विविधताओं की अलग–अलग विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं।

अपवाह तंत्र एवं जैव विविधता

बलिया जनपद की प्रमुख नदियों में गंगा नदी (बलिया में प्रवाह 75– 90 किमी०), घाघरा नदी (बलिया में प्रवाह 110 किमी०), तमसा ((छोटी सरयू नदी, बलिया में प्रवाह 20 किमी०) के अतिरिक्त स्थानीय मगही नदी (3.2 किमी०) एवं लकड़ा नदी (5.3 किमी०) प्रमुख हैं। बलिया जनपद में उपरोक्त नदियों के अतिरिक्त अपवाह प्रतिरूप में स्थानीय नालों का बड़ा महत्व है जिसमें कटहल नाला (16.28 किमी०) भागड़ नाला (9.02 किमी०), चंदवक नाला (4.5 किमी०), नरही (6.7 किमी०), गोन्हिया नाला (7.5 किमी०), टेंगरहीं (38.8 किमी०), फरही (17.4 किमी०), सिसौटार (13.8 किमी०), टिंगरहा (35 किमी०), कोल (38 किमी०), अरुणा (18 किमी०), नकहरा (9.23 किमी०), पगह (13. 8 किमी०), बहेरा (3.6 किमी०), भोगीपुर (3.2 किमी०), बूढ़ी (12.6 किमी०), बसनहीं (17.5 किमी०) प्रमुख हैं। इनके साथ ही साथ मानव निर्मित लिफ्टिंग तकनीकी युक्त दोहरीघाट सहायक परियोजना के अंतर्गत उभावं (बेल्थरा रोड) के निकट निर्मित घाघरा नदी से 23 किमी० लंबी मुख्यशाखा एवं सैकड़ो किमी० माइनर चौनल के साथ पश्चिमी बांगर क्षेत्र में सिंचाई हेतु एक नहर भी बनाई गई है, जो यहां की कृषि जैवविविधता के क्षेत्र में योगदान दे रही है।

तालाब, जलाशय एवं नमभूमियां

जनपद में पुराने दस्तावेजों में कुल छोटे–बड़े 88 प्रमुख प्राकृतिक तालों या झीलों का जिक्र किया गया है, जिनमें से 28 चिन्हित हैं। इन तालों का कुल विस्तार 187.13 वर्ग किमी० भूभाग पर है। इनके अतिरिक्त

सैकड़ो मानव निर्मित ताल भी हैं, जो सार्वजनिक भूमियों पर बनवाए गए हैं तथा कुछ व्यक्तिगत तालाब भी हैं जो लोगों द्वारा जल कृषि अथवा मत्स्यन हेतु बनाए गए हैं। बलिया जनपद का सबसे प्रमुख एवं बड़ा ताल व झील सुरहा ताल है। यह एक झील है जो गंगा नदी का छाड़न (ऑक्सबो लेक) है। यह ताल अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह नालों से गंगा, घाघरा एवं स्थानीय कृषि क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। अन्तर्वाह के रूप में गरई नदी, बूढ़ी नदी एवं माधा नाला तथा बहिर्वाह नाले के रूप में कटहल नाला गंगा नदी से इसको जोड़ता है। इसके अतिरिक्त सिंचाई हेतु इस झील से एक पंप नहर मैरीटार गांव के पास से निकलती है, जिसकी लंबाई 4. 5 किमी० तक है। सामान्यतः इस ताल की लंबाई 4.7 किमी०, चौड़ाई 3.5 किमी० तथा क्षेत्रफल 34.32 वर्ग किमी० है, परंतु बाढ़ के समय इसका क्षेत्रफल 42 से 48 वर्ग किमी० तक एवं सूखे के समय 20 से 22 वर्ग किमी० तक बढ़ता–घटता रहता है। समुद्र तल से इस झील की औसत ऊंचाई 58 मीटर है। सुरहा ताल के बाद क्रमशः मुड़ियारीदह ताल एवं रेवतीदह ताल घाघरा की छाड़न झील के रूप में प्रमुख प्राकृतिक जलाशय हैं। अन्य प्राकृतिक जलाशयों में पश्चिमी उच्च भूमि में गड़हा, इटौरा, खालिस, गोंहिया, दुल्लहपुर एवं मोतीरा ताल मध्य उच्च भूमि में लखुनिया, नगरा, सावन, सुहेला, पकरी एवं मदारी ताल घाघरा खादर क्षेत्र में बरका एवं बहेरी ताल गंगा घाघरा खादर क्षेत्र में संसारटोला, कोडरहा एवं लहसनीय मध्यवर्ती दोआब में यमुना, कोल, चंदवक, बरौली, जमालपुर एवं खामपुर उच्च मैदानी क्षेत्र में मुंडेरा, कैथोली, हरबंशपुर, मुस्तफाबाद, नसीरपुर एवं दौलतपुर ताल प्रमुख हैं। इनके अलावा पकड़ी, हजौली, बिसौली, नकहरा एवं पंडितपुर ताल भी प्रमुख प्राकृतिक जलाशय के रूप में दिखाई पड़ते हैं। बलिया की जलीय वनस्पतियों, जलीय जीवों एवं जलीय पारिस्थितिकी, जैव विविधता में इन झीलों एवं तालों का महत्वपूर्ण योगदान है।

वनस्पतियां एवं जैवविविधता

भारतीय वन संरक्षण के द्विवार्षिक रिपोर्ट के अनुसार बलिया जनपद का वनावरण नगण्य है। यहां कोई भी वन भूमि दस्तावेज में दर्ज नहीं है। भारतीय वन स्थिति के अनुसार जिले में मध्यम सघन वन की मात्रा 0.14 वर्गकिमी० एवं खुला वन लगभग 21 वर्ग किमी० तथा कुल वनावरण का भौगोलिक क्षेत्रफल एक प्रतिशत से भी कम है। खासतौर से खेतों की मेड़ों, चकमार्गो, सड़कों एवं नहरों के किनारे, रेल मार्गों के किनारे, बंजर एवं सामुदायिक भूमियों पर वृक्षावरण के साथ–साथ निजी बाग–बगीचे भी पर्याप्त मात्रा में लगाए गए हैं एवं लगाए जा रहे हैं। वर्ष 2018–19, 2019–20, 2020–21, 2021–22, 2022–23 एवं 2023–24 में जनपद में क्रमशः 13.6 लाख, 35.5 लाख, 31.27 लाख, 37.9 लाख, 43.2 लाख एवं 41.11 लाख पौधारोपण पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन विभाग तथा अन्य विभागों द्वारा किया एवं कराया गया है। जबकि वृक्षारोपण अभियान 2026–27 हेतु जनपद में 39.2 लाख वृक्षारोपण का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, जिसमें वन विभाग द्वारा 13 लाख एवं अन्य विभागों द्वारा 26.5 लक्ष्य लिया गया है। पौधारोपण अभियान के तहत जनपद में निम्नलिखित प्रजाति के पौधे रोपित किये जा रहे हैं –

पौधों की श्रेणी	प्रजातियों के नाम
औषधीय	अर्जुन, गुडहल, तुन, नीम, बहेड़ा, बालमखोरा
चारा	अगस्त, अरू, कचनार, कुसुम, बकैन
फलदार	आम, इमली, आवला, जामुन, नींबू, कटहल, बेल, सहजन, महुआ, करौंदा, शहतूत, जंगलजलेबी
औद्योगिक एवं इमारती	शीशम, सागौन, समल, मिलिया–डुबिया, महोगनी, बांस
पर्यावरणीय	पीपल, बरगद,पाकड़, गूलर, चिलबिल
पोषक तत्व	बेल, सहजन, महुआ, करौंदा, शहतूत,
शोभाकर	अमलतास, अशोक, कदंब, गुलमोहर, छितवन, सिरस





उपरोक्त के अतिरिक्त गंगा–घाघरा के दियार एवं दोआब में प्राकृतिक रूप से बबूल, सरपत सहित अन्य कई प्रकार की झाड़ियां, बेलें, कांटेदार छोटे पौधे आदि पाए जाते हैं। विडंबना यह है कि वन एवं अन्य सरकारी विभागों द्वारा जो पौधारोपण हो रहे हैं, उनमें आधे से अधिक पौधे उचित देखभाल के अभाव में बच नहीं पाते हैं। इसके बावजूद भी जो पौधे बड़े वृक्ष बन जाते हैं, उनका जनपद के जैव विविधता में महत्वपूर्ण योगदान देखने को मिल रहा है। जनपद के आर्द्रभूमियों एवं पक्षी अभ्यारण में पाई जाने वाली सघन वनस्पतियों एवं पारिस्थितिक तंत्रों में व्याप्त जैव विविधता स्थानीय स्तर पर प्रकृति के फेफड़े की तरह कार्य कर रही है।

जीव–जंतु, पक्षियां एवं जैव विविधता

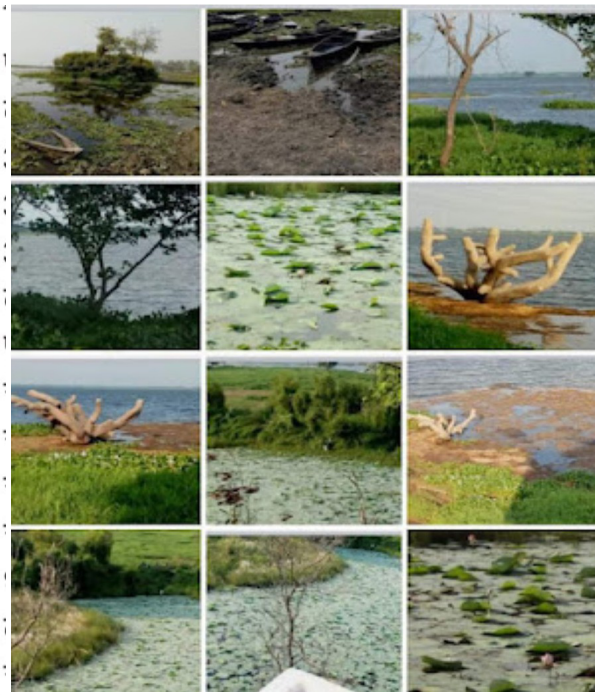
प्राचीन काल में बलिया परिक्षेत्र घने प्राकृतिक वनस्पतियों से आच्छादित था। किंतु जैसे–जैसे मानवीय गतिविधियां बढ़ी, जंगल खत्म होते गए एवं प्राकृतिक भूदृश्य का संपूर्ण स्थान सांस्कृतिक भूदृश्य ने ले लिया, जिसके परिणामस्वरूप वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास एवं उनकी पारिस्थितिकी भी खत्म हो गई। फिर भी सघन कृषि क्षेत्र, बाग बगीचे, झाड़ियां एवं झुरमुट तथा दियारा एवं दोआब क्षेत्र होने के कारण अनेक प्रजातियों के हिंसक व अहिंसक तथा कई प्रजाति के पालतू व जंगली जीव तथा सरीसृप पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, गधा, खच्चर, ऊंट, बकरी, भेड़, सूअर, कुत्ता, बिल्ली, खरगोश आदि तथा जंगली जंतुओं में हिरण, सियार, शाहीपक्षी, ऊदबिलाव, जंगली सूअर, जंगली कुत्ते, जंगली भैंसा, नीलगाय, जंगली बिल्लियां, भेड़िया, लोमड़ी, खरगोश, नेवले, आदि वन्य जीव तथा रंगने वाले जीवो में विभिन्न प्रकार के सांप, चूहे, बिच्छू, गोजर, बिलगोह, गिरगिट, बिछखापड़ आदि पाए जाते हैं। पक्षियों में प्रमुखतया तोता, मैना, कबूतर, गौरैया, फुरगुदी, चाँचा, कोयल, कौआ, चील, गिद्ध, महकुल, बुलबुल, हारिल, बटेर, तीतर, जलमुर्गी, पालतू मुर्गी–मुर्गा, हंस, बत्तख, बगुला, बाज आदि पाए जाते हैं। वर्तमान समय में बढ़ती विकासीय गतिविधियों एवं मिटते पारिस्थितिकी में प्राकृतिक अपघटक गिद्ध एवं चील की संख्या बहुत कम हो गई है, गौरैया भी लगभग विलुप्तप्राय होने वाली है, तथा अन्य छोटी–छोटी अति महत्वपूर्ण पक्षियों की संख्या भी धीरे–धीरे कम हो रही है, जिससे जैव विविधता संकट बढ़ने के संकेत मिल रहे हैं।

आर्द्रभूमियां एवं जैवविविधता

जनपद बलिया में आर्द्र भूमियां प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं, जिसका प्रमुख कारण इस जनपद का तीन तरफ से नदियों द्वारा घेराव, लंबे नदी तट, बाढ़ के मैदान, प्रचुर छाड़न झीलें एवं दलदली तथा प्राकृतिक ताल तलैयों का पाया जाना है। वर्तमान में जिले में 28 महत्वपूर्ण आर्द्रभूमियां चिन्हित हैं। इनमें सुरहा ताल, मुडियारी दहताल एवं रेवती दहताल प्रमुख हैं। यहां खासतौर पर सुरहा ताल का विशेष अध्ययन प्रस्तुत है।

सुरहा ताल आद्रभूमि प्रदेश की बड़ी प्राकृतिक नम भूमियों में स्थान रखती है, जो जैव विविधता के स्तर पर अति समृद्ध है। भौगोलिक दृष्टि से यह एक प्राकृतिक ताल है, जिसका निर्माण गंगा की छाड़न से गोखुर झील के रूप में हुआ है। ऐसी किवदंती जनमानस में व्याप्त है कि बहुत समय पहले एक बार नेपाल के महाराजा सुरथ अपने राज से पदच्युत एवं कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर इस क्षेत्र में निवास करने के लिए आए। इसके जल में नियमित स्नान एवं पान तथा इसकी औषधीय मिट्टी के लेपन से उनका शरीर स्वस्थ हुआ, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने इस ताल का उद्धार करवाया तथा इसके पुराने मार्ग को ठीक कराते हुए गंगा नदी से जोड़ने के लिए कष्टहर नाला (अब कटहल नाला) को भी ठीक कराया। इन्हीं महाराज सुरथ के नाम पर इस ताल का नाम ''सुरथ ताल'' पड़ा, जो अपभ्रंश होकर कालांतर में 'सुरथा लाल' तथा बाद में 'सुरहा ताल' हो गया। अपनी मिट्टी, वनस्पति, जीव जंतु, पक्षियों एवं जलीय वनस्पतियों तथा जीवों के कारण यह एक सघन जैव विविधता युक्त पारिस्थितिकी तंत्र है, जिसे विश्वस्तर पर महत्व देते हुए 'विश्व पर्यावरण दिवस' 5 जून, 2026 को 'इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर' द्वारा भारत का 100वां रामसर स्थल घोषित किया गया है, जो उत्तर प्रदेश राज्य का 13वां रामसर स्थल है। यह आर्द्र भूमि पहले से ही 'जयप्रकाश नारायण पक्षी अभ्यारण' के रूप में प्रवासी साइबेरियन सारस के प्राकृतिक एवं संरक्षित आवासीय क्षेत्र के रूप में मान्यता प्राप्त है। यहां आने वाले प्रमुख विदेशी प्रवासी पक्षियों में बार हेडेडगूज, यूरेशियन टिल, रेड कस्टर्ड कोचार्ड, कॉमन कोचार्ड, नॉर्दर्न शोवलर एवं भेड़वाल, यूरेशियन विजन, वुडसैंड पाइपर एवं रेड संक प्रमुख हैं। जबकि स्थानीय साल भर देखे जाने वाले देशज पक्षियों में हंस की विभिन्न प्रजातियां, अनेक प्रकार की बत्तखें, सारस, लिटिल एवं ग्रेट पामोरिंट, ग्रे हेरान, पेंटेड स्टार्क एवं किंगफिशर मुख्य पक्षी हैं। सुरहा ताल में पाए जाने वाले जलीय जीवों के अंतर्गत मछलियों में बालागोअट्टू, फ्रेशवाटर शार्क, वगैरियास (गोंच कैटफिश) जैसी





कमजोर व असुरक्षित प्रजाति की मछलियां पायी जाती हैं। गंगा एवं घाघरा नदियों से विभिन्न नालों द्वारा जुड़े होने के कारण यह एक प्राकृतिक मत्स्य प्रजनन केंद्र का भी कार्य करता है, जहां गंगा बेसिन की स्वदेशी मछलियां फलती–फूलती हैं। यहां सामान्य व छोटी मछलियों में टेंगरा, दरियाई टेंगरा, मांगुर, महुवाली, गुलशा, पुतिया, पोई, सिधरी, झींगा, सिंगी आदि मुख्य हैं, जबकि व्यावसायिक रूप से प्रसिद्ध मछलियों में कतला, रोहू, मृगल एवं कैटफिश आदि मुख्य हैं। इन मछलियों के अलावा विभिन्न प्रकार के सांप, मेंढक, कछुए, केकड़े, घोंघा सहित अनेक जलीय प्रजातियां पाई जाती हैं।

सुरहा ताल में 221 से अधिक प्रजातियों की जलीय एवं अर्द्धजलीय वनस्पतियां पाई जाती हैं। जिनमें जलकुंभी, जलगोभी, लेमना व बोलबिया, कमल, कुमुदिनी, हाइड्रिला, नाजास, शेरा टॉफिलम, पोटामोजीटॉन, नरकट, साइप्रस, ईपोमिया, मार्सेलिया, विभिन्न प्रकार के शैवाल प्रमुख रूप से पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर जलीय कृषि भी की जाती है, जिसमें कमल के विभिन्न उत्पाद– कमलनाल, कमल गट्टा, कमल कंद, लाल एवं सफेद कमल पुष्प, कुमुदिनी के पुष्प, कोइय्याँ, बेर्रा, सिंघाड़ा एवं एक विशेष प्रकार का धान भी उगाया जाता है, जिसका स्थानीय नाम 'बोरो' है। इस धान की विशेषता यह है कि यह ताल के जल स्तर के अनुसार अपने आप को समायोजित करता रहता है, डूबता नहीं है। यह एक अति स्वादिष्ट एवं औषधीय गुण युक्त चावल होता है जिसके बारे में चिकित्सीय अनुसंधान में यह प्रमाणित हो चुका है कि यह चावल मधुमेह रोगियों के लिए भी उपयुक्त है।

यह ताल अति सघन ग्रामीण आबादी से चतुर्दिक घिरा हुआ है, जिसमें बहुतेरे परिवारों की आजीविका भी इसकी जैव विविधता पर निर्भर करती है। इधर के दशकों में वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण कम वर्षा, अधिक तापमान एवं अनियंत्रित मौसम चक्र के साथ–साथ बेतहाशा मानवीय गतिविधियों के बढ़ने से पक्षी एवं जलीय जीवों पर संकट मडरा रहा है। साथ ही साथ यहां की प्राकृतिक वनस्पतियां भी संकट में हैं। इसी के मद्देनजर इस आर्द्रभूमि की अगाध जैव विविधता को देखते हुए इसे संरक्षण प्रदान करने के लिए इसको रामसर स्थल घोषित किया गया है, जिससे इसके संरक्षण एवं संवर्द्धन की आशा जगी है। अगर इस आर्द्रभूमि के प्राकृतिक स्वरूप को बरकरार रख सकें, तो यह अपार जलीय संसाधनों के साथ–साथ पारिस्थितिकी पर्यटन के एक महत्वपूर्ण स्थल के रूप में विकसित हो सकता है तथा इस क्षेत्र में बहुआयामी सुदृढ़ आर्थिक, पारिस्थितिक व सांस्कृतिक आधार प्रदान कर सकता है।

1. सहायक आचार्य भूगोल, कमला देवी बाजोरिया डिग्री कॉलेज, दुबहर बलिया, उ०प्र०।
2. पूर्व शैक्षणिक निदेशक, जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय, बलिया, उ०प्र०।

जैव विविधता

असम की जैव विविधता: संकटग्रस्त जीव, वनस्पति और उनका संरक्षण

-मंजूरी डेका

⟶ जैव विविधता पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीवों के बीच का संबंध है जो सभी के लिए अनिवार्य है। यह संबंध सभी का अस्तित्व बनाए रखती है। भारत जैव विविधता के मामले में दुनिया का समृद्ध देश है। यह विविधता भारत के विभिन्न राज्यों की जलवायुवीय परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई है। भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में असम देश का ऐसा राज्य है जो जैव विविधता से परिपूर्ण है। प्रस्तुत लेख में असम की जैव विविधता पर एक दृष्टि डाली गई है।

असम भारत का एक ऐसा राज्य है जो अपनी प्राकृतिक सुंदरता, घने जंगलों, ब्रह्मपुत्र नदी और अद्वितीय जैव विविधता के लिए पूरी दुनिया में जाना जाता है। असम भारत के उत्तर–पूर्वी हिस्से में स्थित एक भौगोलिक और रणनीतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण राज्य है, जिसे पूर्वोत्तर के राज्यों का ''प्रवेश द्वार'' कहा जाता है। मुख्य रूप से 24''3' उत्तर से 28'' उत्तर अक्षांश और 89''5' पूर्व से 96''1' पूर्व देशांतर के बीच स्थित इस राज्य का कुल क्षेत्रफल 78,438 वर्ग किलोमीटर है, जो इसे क्षेत्रफल के हिसाब से उत्तर–पूर्व का दूसरा सबसे बड़ा राज्य बनाता है। असम की सीमाएं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उत्तर में भूटान और दक्षिण–पश्चिम में बांग्लादेश से मिलती हैं, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह पश्चिम बंगाल, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा और मेघालय सहित कुल सात राज्यों से घिरा हुआ है। भौतिक बनावट के आधार पर इसे तीन बड़े प्राकृतिक हिस्सों में विभाजित किया गया है–उत्तर की विशाल, गहरी और उपजाऊ ब्रह्मपुत्र घाटी, दक्षिण की छोटी बराक घाटी तथा इन दोनों मैदानी भागों को एक–दूसरे से अलग करने वाली मध्य की कार्बी आंगलोंग और डिमा हसाओ (उत्तर कछार) की पहाड़ियाँ। यहाँ की जलवायु मुख्य रूप से अत्यधिक आर्द्र उष्णकटिबंधीय मानसूनी प्रकार की है, जिसके कारण मार्च से अक्टूबर के बीच यहाँ भारी वर्षा होती है और हवा में नमी का स्तर बहुत ऊंचा रहता है। इसी प्रचुर वर्षा और नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी (Alluvial Soil) की वजह से असम आज दुनिया का सबसे बड़ा चाय उत्पादक क्षेत्र है, और साथ ही डिगबोई जैसे क्षेत्रों के साथ यह भारत में कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस का सबसे पुराना खनिज भंडार भी है। जल प्रणाली के मामले में यह राज्य बेहद समृद्ध है, जहाँ इसकी मुख्य जीवन रेखा 'ब्रह्मपुत्र नदी' इसके बीच से होकर पश्चिम की ओर बहती है, जिसके विशाल जलतंत्र के कारण जहाँ एक ओर यहाँ हर साल भीषण मानसूनी बाढ़ आती है, वहीं दूसरी ओर इसी नदी के गर्भ में दुनिया का सबसे बड़ा नदी द्वीप 'माजुली' स्थित है। इसके अलावा, दक्षिणी हिस्से की मुख्य नदी बराक है, और इन्हीं दोनों नदियों के घाटियों वाले इलाकों में फैले घने सदाबहार वनों के रूप में काजीरंगा, मानस और रायमोना जैसे विख्यात राष्ट्रीय उद्यान फल–फूल रहे हैं, जो एक सींग वाले भारतीय गैंडे, दलदली हिरण और बाघों जैसे दुर्लभ जीवों को एक आदर्श प्राकृतिक पर्यावास प्रदान करते हैं।

असम जैव–विविधता की दृष्टि से भारत के सबसे समृद्ध राज्यों में से एक है। किंतु पिछले 25 वर्षों में वनों की कटाई और आवास का विनाश, अवैध शिकार, मानव–वन्यजीव संघर्ष, नदी एवं पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, शहरीकरण और औद्योगीकरण आदि के कारण अनेक वन्यजीव और पक्षी प्रजातियाँ संकटग्रस्त हो गई हैं। IUCN (इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर) की रेड लिस्ट के अनुसार असम के कुछ प्रमुख विलुप्त, संकटग्रस्त और अति–संकटग्रस्त जीवों की सूची नीचे दी गई है–

1. स्थानीय रूप से विलुप्त प्रजातियाँ

गुलाबी सिर वाली बत्तख : यह पक्षी कभी असम के आर्द्र क्षेत्रों में पाया जाता था। लंबे समय से इसका कोई विश्वसनीय रिकॉर्ड नहीं मिला है और इसे लगभग विलुप्त माना गया है।

जावन गैंडा : ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार यह प्रजाति पूर्वोत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में पाई जाती थी, लेकिन अब असम से पूरी तरह विलुप्त हो चुकी है।

2. अति–संकटग्रस्त जीव

यह वे जीव हैं जिनकी संख्या उंगलियों पर गिनने लायक रह गई है और इन्हें सबसे ज्यादा सुरक्षा की जरूरत है :

पायग्मी हाग (Pygmy Hog-Porcula salvani): यह दुनिया का सबसे छोटा और दुर्लभ जंगली सूअर है। कभी यह पूरे भारत और नेपाल में पाया जाता था,

लेकिन अब यह मुख्य रूप से केवल असम के मानस राष्ट्रीय उद्यान (Manas National Park) के ऊंचे घास के मैदानों तक ही सीमित रह गया है।

व्हाइट-बैलैड हेरॉन (White-bellied Heron): यह दुनिया के सबसे दुर्लभ बगुला प्रजाति के पक्षियों में से एक है, जो असम और अरुणाचल के नदी क्षेत्रों में पाया जाता है।

असम रूफ्ड टर्टल (*Assam Roofed Turtle-Pangshura sylhetensis*): ब्रह्मपुत्र नदी प्रणाली में पाया जाने वाला यह एक बेहद दुर्लभ कछुआ है, जिसका शिकार और पर्यावास नष्ट होने के कारण यह खतरे में है।

3. संकटग्रस्त जीव

इन जीवों की संख्या भी बहुत तेजी से घट रही है और इन्हें बचाने के लिए कड़े कदम उठाए जा रहे हैं–

गोल्डन लंगूर (*Gee^sGolden Langur-Trachypithecus geei*): सुनहरे बालों वाला यह खूबसूरत बंदर पूरी दुनिया में केवल पश्चिमी असम (जैसे चक्रशिला वन्यजीव अभ्यारण्य) और भूटान की सीमाओं पर ही पाया जाता है। वनों की कटाई के कारण इनका अस्तित्व खतरे में है।

हुलश्वक गिब्बन (Hoolock Gibbon): यह भारत का इकलौता बिना पूंछ वाला वानर (Ape) है। यह असम के वर्षावनों (जैसे होलोंगा पार गिब्बन अभ्यारण्य) में पाया जाता है। पेड़ों के कटने से इनका एक से दूसरे पेड़ पर जाना मुश्किल हो गया है।

हिस्पिड हेयर (Hispid Hare/Assam Rabbit): इसे असमिया खरगोश भी कहा जाता है। यह मानस और बरनादी वन्यजीव अभ्यारण्य के ऊंचे घास के मैदानों में छिपकर रहता है।

व्हाइट-विंग्ड वुड डक (White-winged Wood Duck): यह असम का राजकीय पक्षी (State Bird) है, जिसे स्थानीय भाषा में 'देओ हाँह' (Deo Hanh) कहते हैं। यह घने सदाबहार जंगलों के तालाबों में रहता है और अब इसकी संख्या बहुत कम बची है।

रश्वयल बंगाल टाइगर (Royal Bengal Tiger): असम के काजीरंगा, मानस और ओरांग राष्ट्रीय उद्यानों में बाघों की अच्छी आबादी है, लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह प्रजाति अभी भी संकटग्रस्त (Endangered) श्रेणी में है।

गंगा डॉल्फिन (Ganges River Dolphin/Xihu): ब्रह्मपुत्र और उसकी सहायक नदियों में पाई जाने वाली यह अंधी डॉल्फिन पानी के प्रदूषण और मछली पकड़ने वाले जालों में फंसने के कारण खतरे में है।

4. संवेदनशील जीव (Vulnerable Species)

एक सींग वाला भारतीय गैंडा (Greater One&Horned Rhino): हालांकि असम के अथक प्रयासों(जैसे काजीरंगा में संरक्षण) के कारण गैंडों की संख्या में सुधार हुआ है, लेकिन शिकारियों के खतरे को देखते हुए इसे अभी भी IUCN की संवेदनशील सूची में रखा गया है।

असम की प्रमुख वनस्पतियों और पेड़–पौधों की जानकारी नीचे दी गई है–

असम का राजकीय वृक्ष : होलोंग (Hollong-Dipterocarpus retusù), यह असम का राजकीय वृक्ष (State Tree) है। यह एक बहुत ही ऊंचा और सदाबहार पेड़ होता है, जो ऊपरी असम के डिब्रूगढ़, तिनसुकिया और चराईदेव के जंगलों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पर्यावरण संतुलन और वन्यजीवों (जैसे हुलॉक गिब्बन) के रहने के लिए यह पेड़ बेहद महत्वपूर्ण है।

असम का राजकीय फूल : कपोउ फूल (*FoÛtail Orchid-Rhynchostylis retusa*), यह असम का राजकीय फूल (*State Flower*) है। यह एक परजीवी पौधा (*Epiphytic Orchid*) है जो अन्य पेड़ों की टहनियों पर उगता है। असमिया संस्कृति और बिहू उत्सव में इस फूल का बहुत बड़ा महत्व है। इसके बिना बिहू का श्रृंगार अधूरा माना जाता है।

5. असम की संकटग्रस्त वनस्पतियाँ

असम के वर्षावनों में पाए जाने वाले कुछ पौधे और पेड़ अब विलुप्ति के कगार पर हैं–

पिचर प्लांट (Pitcher Plant/घटपर्णी): असम और मेघालय की सीमाओं पर पाए जाने वाले ये मांसाहारी पौधे (Insectivorous Plants) हैं, जो अपनी नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए कीड़े–मकोड़ों को खाते हैं। पर्यावास नष्ट होने के कारण ये अब बहुत कम बचे हैं।

असम साइकैड (*Assam Cycad-Cycas pectinat*): यह डायनासोर के जमाने का एक प्राचीन पौधा (Living Fossil) है जो ताड़ (Palm) के पेड़ जैसा दिखता है। असम के पहाड़ी जंगलों में अंधाधुंध कटाई के कारण इसकी संख्या तेजी से घट रही है।

दुर्लभ आर्किड्स (Rare Orchid): असम को 'ऑर्किड्स का स्वर्ग' कहा जाता है, लेकिन इसकी कई प्रजातियाँ जैसे Blue Vanda और Lady^s Slipper Orchid अब जंगलों से लगभग गायब होने की कगार पर हैं।

6. अति-संकटग्रस्त पक्षी

ये वे पक्षी हैं जिनकी संख्या दुनिया में सबसे कम बची है और यदि इन्हें तुरंत न बचाया गया, तो ये हमेशा के लिए खत्म हो जाएंगे:

व्हाइट-बैलैड हेरॉन (White-bellied Heron-Ardea insigni): यह दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा और अत्यंत दुर्लभ बगुला प्रजाति का पक्षी है। यह असम और अरुणाचल प्रदेश के सुदूर, बिना प्रदूषण वाली पहाड़ी नदियों के किनारों पर पाया जाता है। दुनिया भर में इनकी संख्या केवल कुछ सौ ही बची है।

बंगाल फ्लोरिकन (Bengal Florican-*Houbaropsis bengalensi*): यह तीतर और शुतुरमुर्ग के परिवार से ताल्लुक रखने वाला एक बेहद खूबसूरत और शर्मीला पक्षी है। यह असम के मानस और ओरांग राष्ट्रीय उद्यान के ऊंचे व शुद्ध घास के मैदानों (*Grassland*) में रहता है। घास के मैदानों के नष्ट होने से इसका अस्तित्व भारी खतरे में है।

सफेद पीठ वाला गिद्ध (White-rumped Vulture) और लंबी चोंच वाला गिद्ध (lender&billed Vulture): असम में पाए जाने वाले इन गिद्धों की संख्या पिछले 20–25 सालों में 99: तक घट गई है। इसका मुख्य कारण मवेशियों को दी जाने वाली 'डाइक्लोफेनाक' (Diclofenac) नामक दवा थी, जिसके कारण मरे हुए जानवरों को खाने से गिद्धों के गुर्दे फेल हो जाते थे।

7. संकटग्रस्त पक्षी

इन पक्षियों की आबादी भी बहुत तेजी से गिर रही है और इन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता है

व्हाइट-विंग्ड वुड डक (White-winged Wood Duck – *Asarcornis scutulata*): इसे स्थानीय भाषा में 'देओ हाँह' (Deo Hanh) कहा जाता है और यह असम का राजकीय पक्षी (State Bird) है। यह बत्तख घने सदाबहार वर्षा वनों के भीतर स्थित प्राकृतिक तालाबों में एकांत में रहना पसंद करती है। ऊपरी असम के तिनसुकिया और डिब्रूगढ़ (जैसे डिब्रू–सैखोवा) के जंगलों में यह पाई जाती है।

ग्रेटर एडजुटेंट स्टार्क (Greater Adjutant Stork & Leptoptilos dubiu): इसे असमिया में 'हरगिला' (Hargila) कहा जाता है। यह विशालकाय बत्तख या बगुले जैसा दिखने वाला पक्षी है। पूरी दुनिया में इसकी सबसे बड़ी आबादी असम में ही बची है। जैसा कि हमने पहले जाना था, असम की डॉ. पूर्णिमा देवी बर्मन और उनकी 'हरगिला आर्मी' ने इस संकटग्रस्त पक्षी को बचाने के लिए ऐतिहासिक काम किया है।

8. संवेदनशील पक्षी (Vulnerable Bird)

लेसर एडजुटेंट (Lesser Adjutant/बर्तुला): यह हरगिला का छोटा भाई जैसा दिखता है, यह भी असम के खेतों और आर्द्रभूमियों में पाया जाता है और इसकी संख्या भी लगातार कम हो रही है।

स्वैम्प फ्रैंकोलिन (Swamp Francolin): यह दलदली तीतर है जो केवल असम के काजीरंगा जैसे ऊंचे घास वाले दलदली इलाकों में पाया जाता है

अगर हम पिछले 25 वर्षों (2001 से 2026) की बात करें, तो असम की जैव विविधता और विज्ञान के क्षेत्र में कई अभूतपूर्व खोजें हुई हैं। पूर्वोत्तर भारत का यह हिस्सा दुनिया के प्रमुख 'बायोडायवर्सिटी हॉटस्पॉट्स' में से एक है। पिछले 25 सालों में असम के जंगलों, गुफाओं और नदियों से खोजी गई कुछ सबसे बड़ी और ऐतिहासिक प्रजातियों की सूची नीचे दी गई है–

1. स्तनधारी जीव व्हाइट-चीक्ड मकाक

(White&cheeked Macaque & *Macaca leucogenys*): खोज वर्ष 2022, पिछले 25 साल की यह असम की सबसे बड़ी खोजों में से एक है। वैज्ञानिकों ने इस दुर्लभ सफेद गालों वाले बंदर को असम के अंजॉ जिले और मानस राष्ट्रीय उद्यान के आस–पास के क्षेत्रों में खोजा। भारत में इसकी मौजूदगी का पता पहली बार हाल ही में चला है।

2. रेंगने वाले जीव

पिछले ढाई दशकों में असम में छिपकलियों और सांपों की दर्जनों नई प्रजातियां खोजी गई हैं, जिनमें हालिया खोजें भी शामिल हैं–

सिर्टोडैक्टिलस रायमोनाएन्सिस और जयदित्यई (*Cyrtodactylus raimonaensis*&jayadityai): इसकी खोज अप्रैल 2026 में हुई, यह भी मुड़े हुए पंजों वाली गेको (Bent&toed Gecko/छिपकली) की ये दो बिल्कुल नई प्रजातियां असम के रायमोना राष्ट्रीय उद्यान, कोकराझार से खोजी गई हैं। इसका नाम पूर्वोत्तर के प्रसिद्ध वन्यजीव विशेषज्ञ और संरक्षणवादी के सम्मान में रखा गया है।

असम कीलबैक (*Assam Keelback & Herpetoreas pealii*): पुनः खोज वर्ष 2020 यह सांप कोई नई खोज नहीं था, लेकिन यह 129 साल से लापता था। वैज्ञानिकों ने इसे मृत मान लिया था, लेकिन 2020 में असम के शिवसागर जिले के जंगलों में इसे फिर से जीवित खोज निकाला गया, जो इस सदी की बड़ी वन्यजीव घटनाओं में से एक है।

3. जलचर और मछलियाँ

गिटचाक नाकाना (*Gitchak nakan*): इसकी खोज मार्च 2026 में जर्मनी, भारत और स्विट्जरलैंड के शोधकर्ताओं ने असम के एक कुएं से इस बेहद अजीब मछली की खोज की है। यह पूर्वोत्तर भारत में पाई जाने वाली पहली भूजल/गुफा (Subterranean) मछली है। यह बिल्कुल अनोखी अंधी भूजल मछली (Subterranean Fish) है। यह केवल 2 सेंटीमीटर की है, इसका शरीर पारदर्शी है और इसकी खोपड़ी पर हड्डी की जगह केवल त्वचा है जिससे इसका खून साफ दिखाई देता है और यह चमकीले लाल रंग की दिखती है।

चन्ना स्नेकहेड की नई प्रजातियां (Channa Species): इसकी खोज पिछले 10–15 वर्षों के दौरान असम के दलदली इलाकों और 'बील' से रंग–बिरंगी 'गराचुआ' या स्नेकहेड (Channa) मछली की कई नई प्रजातियां खोजी गई हैं, जो केवल असम के मीठे पानी में पाई जाती हैं।

4. वनस्पतियाँ और पौधे

ओस्बेकिया जुबीनगार्गियाना (*Osbeckia zubeengargian*): इसकी खोज मार्च 2026 मानस नेशनल पार्क के घास के मैदानों में हुई थी, यह एक बिल्कुल नई झाड़ीदार पौधे की प्रजाति है, जिसमें चमकीले बैंगनी–गुलाबी फूल खिलते हैं। इसका नाम असम के सांस्कृतिक प्रतीक जुबीन गार्ग के सम्मान में रखा गया है। गुवाहाटी विश्वविद्यालय के वनस्पति वैज्ञानिकों (Barnali Das और Namita Nath) ने इस नए पौधे की खोज की है। यह 2.5 से 3.5 मीटर लंबा एक बारहमासी झाड़ीदार पौधा है, जिसमें बेहद खूबसूरत बैंगनी से लेकर चमकीले गुलाबी रंग के फूल खिलते हैं।

जिंजर अदरक की नई प्रजातियां : इसकी खोज 2015–2020 के बीच'आरण्यक' और गुवाहाटी यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने कार्बी आंगलोंग के पहाड़ों से जंगली अदरक की कई नई प्रजातियों की खोज की है, जिनका उपयोग औषधियां बनाने में होता है।

5. कीट–पतंगे

लॉन्ग–टेल्ड बोगहॉकर (*Sarasaeschna dosdewaensi*): इसे शोधकर्ताओं की एक अंतरराष्ट्रीय टीम ने अप्रैल 2026 में, असम के श्रीभूमि जिले के एक सुदूर वन गांव 'दोसदेवा' से इस नई ड्रैगनफ्लाई को खोजा और इसका नाम भी इसी गांव के नाम पर रखा गया।

6. असम में दर्ज अन्य महत्वपूर्ण वन्यजीव रिकार्ड्स–

येलो–थ्रोटेड मार्टन (Yellow-throated Marten): जून 2026 में पहली बार काजीरंगा नेशनल पार्क में इस दुर्लभ मांसाहारी जीव (मार्टन) की मौजूदगी दर्ज की गई, जो असम के सफल संरक्षण मॉडल को दर्शाता है।

सिर्टोडिक्टिलस बापमे (*Cyrtodactylus bapme*): मई 2026 में पहली बार असम के गोलपारा जिले के उरपाद बील (Urpad Beel) वेटलैंड से इस बेंट–टोएड गेको की मौजूदगी की आधिकारिक पुष्टि (First Confirmed Sighting) की गई है।

असम के महान पर्यावरणविद्–

इस अमूल्य प्राकृतिक धरोहर को बचाने में असम के कई महान सपूतों और पर्यावरणविदों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इन लोगों ने बिना किसी सरकारी मदद के, केवल अपने दृढ़ संकल्प के बल पर जंगलों को उगाया, लुप्तप्राय जीवों को बचाया और दुनिया के सामने मिसाल पेश की। असम के प्रमुख पर्यावरणविदों और उनके महान कार्यों का विस्तृत विवरण नीचे दिया गया है–

1. जादव पायेंग ''फॉरेस्ट मैन ऑफ इंडिया''

जादव पायेंग असम के ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए पर्यावरण संरक्षण के सबसे बड़े प्रतीक हैं। वे असम के जोरहाट जिले के 'मिसिंग' जनजाति से ताल्लुक रखते हैं। साल 1979 में, जब जादव केवल 16 वर्ष के थे, तब ब्रह्मपुत्र नदी में भीषण बाढ़ आई। बाढ़ के बाद उन्होंने देखा कि नदी के रेतीले तट पर सैकड़ों सांप और जीव गर्मी और छांव न होने के कारण मर गए। इस दृश्य ने उनके दिल को झकझोर दिया। उन्होंने उसी बंजर रेतीली जमीन पर अकेले ही पेड़ लगाना शुरू किया। पिछले 40 से अधिक वर्षों की लगातार मेहनत से उन्होंने अकेले ही 1400 एकड़ के बंजर इलाके को एक घने जंगल में बदल दिया, जिसे आज उनके नाम पर 'मोलाई कतोनी' या 'मोलाई फॉरेस्ट' कहा जाता है। यह जंगल अब बंगाल टाइगर, भारतीय गैंडों, हाथियों के झुंड और सैकड़ों प्रकार के पक्षियों का घर बन चुका है। भारत सरकार ने उन्हें साल 2015 में 'पद्म श्री' से सम्मानित किया। उनके जीवन पर कई डॉक्यूमेंट्री और फिल्में भी बन चुकी हैं।

2. मनोज गोगोई ''काजीरंगा के वन्यजीव रक्षक''

मनोज गोगोई असम के प्रसिद्ध काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान के पास रहने वाले एक असाधारण वन्यजीव रक्षक और प्रकृतिवादी हैं। असम में हर साल ब्रह्मपुत्र नदी में आने वाली भीषण बाढ़ के कारण काजीरंगा का एक बहुत बड़ा हिस्सा डूब जाता है। ऐसे समय में काजीरंगा के जानवर जान बचाने के लिए ऊंचे इलाकों या इंसानी बस्तियों की तरफ भागते हैं, जहाँ वे अक्सर दुर्घटनाओं या इंसानी हमलों का शिकार हो जाते हैं।

मनोज गोगोई ने अपनी जान जोखिम में डालकर अब तक 5000 से अधिक जंगली जानवरों, पक्षियों और अत्यंत जहरीले सांपों को रेस्क्यू किया है। वे घायल जानवरों का इलाज करते हैं और ठीक होने पर उन्हें वापस सुरक्षित जंगलों में छोड़ देते हैं। उनका पूरा जीवन काजीरंगा के जीवों की सुरक्षा के लिए समर्पित है।

3. डॉ. पूर्णिमा देवी बर्मन ''स्टार्क सिस्टर''

डॉ. पूर्णिमा देवी बर्मन असम की एक वन्यजीव जीव विज्ञानी हैं, जिन्होंने एक ऐसे पक्षी को समाज में सम्मान और जीवन दान दिया, जिससे लोग नफरत करते थे। असम में एक बहुत बड़ा बगुला प्रजाति का पक्षी पाया जाता है जिसे 'हरगिला' (Greater Adjutant Stork) कहते हैं। यह पक्षी मरे हुए जीवों को खाता था और पेड़ों पर गंदगी फैलाता था, जिसके कारण ग्रामीण इसके घोंसले वाले पेड़ों को काट देते थे। इसके कारण यह प्रजाति विलुप्त होने की कगार पर पहुंच गई थी। पूर्णिमा देवी ने ग्रामीणों को यह समझाया कि हरगिला पर्यावरण के लिए कितने जरूरी हैं। इन्होंने विलुप्तप्राय 'हरगिला' पक्षी को बचाने के लिए 20,000 ग्रामीण महिलाओं की 'हरगिला आर्मी' बनाई। उन्होंने इस पक्षी को असम की सांस्कृतिक पहचान और असमिया पारंपरिक कपड़े मेखला–चादर के डिजाइन से जोड़ दिया। उनके इस अद्भुत सामुदायिक प्रयास के लिए उन्हें 'व्हिटली गोल्ड अवार्ड', जिसे 'ग्रीन ऑस्कर' भी कहा जाता है, और संयुक्त राष्ट्र (UN) के सर्वोच्च पर्यावरण सम्मान 'चौंपियंस ऑफ द अर्थ' से सम्मानित किया गया है।

4. डॉ. बिभब कुमार तालुकदार–''गैंडों के संरक्षक''

डॉ. बिभब कुमार तालुकदार एशिया के अग्रणी वन्यजीव वैज्ञानिकों और संरक्षणवादियों में से एक हैं। वे असम की प्रसिद्ध पर्यावरण संस्था 'आरण्यक' के संस्थापक और सीईओ हैं। असम का 'एक सींग वाला गैंडा' पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है, लेकिन शिकारियों के कारण इन पर हमेशा खतरा मंडराता रहता है। डॉ. तालुकदार ने असम सरकार और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के साथ मिलकर 'इंडियन राइनो विजन 2020' के तहत एक सींग वाले गैंडों के संरक्षण और एंटी–पोचिंग (अवैध शिकार विरोधी) रूपरेखा तैयार करने में मुख्य भूमिका निभाई। उन्होंने अवैध शिकार को रोकने के लिए खुफिया तंत्र को मजबूत किया और गैंडों को काजीरंगा से असम के अन्य अभ्यारण्यों (जैसे मानस और पबितरा) में स्थानांतरित करके उनकी आबादी को सुरक्षित रूप से बढ़ाने का काम किया।

5. आनंद अग्रवाल–''जोरहाट के पर्यावरण प्रहरी''

आनंद अग्रवाल असम के जोरहाट क्षेत्र के एक और समर्पित पर्यावरण कार्यकर्ता हैं, जो जादव पायेंग की तरह ही जमीन से जुड़कर काम कर रहे हैं। आनंद अग्रवाल ने असम के ग्रामीण इलाकों में बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण अभियान चलाया है। प्रकृति के प्रति उनके निःस्वार्थ समर्पण को देखते हुए 'जादव पायेंग इंटरनेशनल अवार्ड' से नवाजा गया है। वे नई पीढ़ी के बच्चों और युवाओं को प्रकृति से जोड़ने के लिए लगातार कार्यशालाएं आयोजित करते हैं।

निष्कर्ष

असम की समृद्ध जैव–विविधता और उसका अनूठा इकोसिस्टम पूरी दुनिया के लिए प्रकृति का एक अनमोल उपहार है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण और वन्यजीवों का संरक्षण केवल कागजी योजनाओं, भारी–भरकम बजट या बड़ी कॉन्फ्रेंसेस का मोहताज नहीं है, बल्कि इसके लिए जादव पायेंग, पूर्णिमा देवी और मनोज गोगोई जैसे नायकों की 'सच्ची नीयत' और 'अटूट हौसले' की आवश्यकता होती है।

जहाँ एक ओर मानवीय हस्तक्षेप, वनों की कटाई और आर्द्रभूमि के सिकुड़ने से कई अद्भुत प्रजातियों पर विलुप्ति का खतरा मंडरा रहा है, वहीं दूसरी ओर हालिया नई खोजें और वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के तहत कड़े सुरक्षा दायरे में लाने के प्रयास एक नई उम्मीद जगाते हैं। बीते 25 वर्षों का इतिहास गवाह है कि यदि स्थानीय समुदाय और प्रशासन मिलकर दृढ़ संकल्प लें, तो इंसानों और वन्यजीवों के बीच एक खूबसूरत संतुलन बनाया जा सकता है। असम के घने जंगलों और नदियों में छिपे प्रकृति के रहस्यों को आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का एकमात्र रास्ता यही है कि हम विकास के साथ–साथ सह–अस्तित्व की इस भावना को और मजबूत करें।

स्रोत

1.Wikipedia
2.Scribd
3.The Indian EÛpress
4.India's Endangered
5.The Hindu
6.Current Affairs Usthadian Academy
7.GKToday
8.PMF IAS+ 1
9.Current Affairs Usthadian Academy
10.WordPress.com
11.Kaikki.org
12.Press Trust of India

संपर्क सूत्र– monjurideka99gmail.com

जैव विविधता

मध्य भारत के मैकाल जैव-सांस्कृतिक परिक्षेत्र में जैव विविधता का अध्ययन

-रोहित पासी[1], एवं डॉ. अमित भूषण द्विवेदी[2]

⟶ मानव सभ्यता का विकास सदैव प्राकृतिक पर्यावरण के साथ घनिष्ठ अंतःक्रिया के माध्यम से हुआ है, और यह संबंध विशेष रूप से उन क्षेत्रों में अधिक प्रगाढ़ देखा जाता है जहाँ जनजातीय समुदाय वनों एवं प्राकृतिक संसाधनों पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर रहे हैं। मध्य भारत का मैकाल क्षेत्र इसी प्रकार की एक अनूठी भौगोलिक इकाई है, जो सतपुड़ा–मैकाल पर्वत श्रृंखला के अंतर्गत आता है और छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के सीमावर्ती भू–भागों को आपस में जोड़ता है। यह क्षेत्र सघन सागौन एवं साल वनों, समृद्ध वन्यजीव विविधता तथा गोंड, बैगा, कोरकू, भारिया जैसी अनेक जनजातियों की पारंपरिक जीवन–शैली के लिए विशिष्ट पहचान रखता है।

जैव–सांस्कृतिक परिक्षेत्र की अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि जैव विविधता और सांस्कृतिक विविधता परस्पर अंतर्संबद्ध हैं तथा एक के क्षरण का सीधा प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। मैकाल क्षेत्र में सदियों से जनजातीय समुदायों ने वन संसाधनों के सतत उपयोग, पारंपरिक कृषि पद्धतियों, औषधीय वनस्पति ज्ञान तथा धार्मिक–सांस्कृतिक मान्यताओं के माध्यम से जैव विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बैगा जनजाति की 'बेवर' कृषि पद्धति, गोंड समुदाय की वृक्ष–पूजा परंपरा तथा सरना स्थलों (पवित्र उपवनों) का संरक्षण इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। किंतु बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से, विशेषतः स्वतंत्रता–पश्चात विकासात्मक नीतियों, औद्योगीकरण तथा खनन गतिविधियों के विस्तार के साथ इस संतुलन में निरंतर क्षरण देखा जा रहा है। वनों की अंधाधुंध कटाई, कोयला तथा बॉक्साइट खनन, सड़क एवं रेल अधोसंरचना का विस्तार, तथा बड़े बांध परियोजनाओं ने न केवल वन्यजीव आवासों को खंडित किया है, बल्कि जनजातीय समुदायों के पारंपरिक भूमि अधिकारों, आजीविका के साधनों और सांस्कृतिक पहचान को भी गहरे रूप से प्रभावित किया है।

मैकाल पर्वतमाला मध्य भारत की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाओं में से एक है, जो सतपुड़ा पर्वत श्रृंखला का पूर्वी विस्तार मानी जाती है। यह क्षेत्र लगभग 22 डिग्री उत्तरी अक्षांश और 81 डिग्री पूर्वी देशांतर के आसपास केंद्रित है तथा छत्तीसगढ़ के बिलासपुर, मुंगेली, कबीरधाम जिलों एवं मध्य प्रदेश के अनूपपुर, डिंडोरी, मंडला जिलों तक विस्तृत है। नर्मदा नदी का उद्गम स्थल अमरकंटक इसी क्षेत्र में स्थित है, जो इसे जल–वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण बनाता है। भौगोलिक संरचना की दृष्टि से यह क्षेत्र पठारी एवं पहाड़ी स्थलाकृति से युक्त है, जिसकी औसत ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 600 से 1100 मीटर के बीच है। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय मानसूनी प्रकार की है, जिसमें वार्षिक वर्षा का अधिकांश भाग जून से सितंबर के मध्य प्राप्त होता है। यह वर्षा पैटर्न सघन पर्णपाती वनों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करता है।

इस क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण संरक्षित क्षेत्र स्थित हैं, जिनमें अचानकमार वन्यजीव अभयारण्य (छत्तीसगढ़) बाघ संरक्षण परियोजना के अंतर्गत सघन साल वनों से आच्छादित है, कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (मध्य प्रदेश) बारहसिंगा संरक्षण हेतु प्रसिद्ध है तथा समृद्ध मिश्रित वन पारिस्थितिकी तंत्र रखता है, किसली अभयारण्य कान्हा परिक्षेत्र का अभिन्न भाग है, और अमरकंटक जैव विविधता क्षेत्र नर्मदा उद्गम स्थल होने के साथ–साथ औषधीय वनस्पतियों का प्राकृतिक भंडार भी है। इन संरक्षित क्षेत्रों के बीच पारिस्थितिक गलियारों (इकोलॉजिकल कॉरिडोर) की उपस्थिति वन्यजीवों के स्वच्छंद आवागमन हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है, किंतु बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप के कारण ये गलियारे निरंतर संकुचित होते जा रहे हैं।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य मैकाल क्षेत्र की भौतिक भू–आकृति, जल–प्रणाली एवं वनस्पति–वन्यजीव विविधता का विश्लेषण करना, क्षेत्र में निवासरत प्रमुख जनजातीय समुदायों की पारंपरिक जीवन–शैली एवं उनके जैव विविधता संरक्षण में योगदान का अध्ययन करना, वनों की कटाई, खनन तथा अधोसंरचना विकास से उत्पन्न पारिस्थितिक एवं सांस्कृतिक क्षरण के कारकों की पहचान करना तथा जैव विविधता एवं जनजातीय संस्कृति के दीर्घकालिक सह–अस्तित्व हेतु नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना है।

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुसंधान पद्धति पर आधारित है। आँकड़ों के संकलन हेतु पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है,

जिनमें भारत की जनगणना 2011 के जनसांख्यिकीय आँकड़े, छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश राज्य वन विभाग तथा केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय की रिपोर्टें, भारतीय वन सर्वेक्षण के सामयिक प्रतिवेदन, तथा भूगोल, मानवशास्त्र एवं पर्यावरण विज्ञान से संबंधित पूर्ववर्ती शोध–पत्र सम्मिलित हैं। प्राप्त आँकड़ों का गुणात्मक विश्लेषण कर जैव विविधता, भूमि उपयोग परिवर्तन तथा जनजातीय सामाजिक–आर्थिक स्थिति के मध्य सहसंबंध स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

मैकाल क्षेत्र उष्णकटिबंधीय आर्द्र एवं शुष्क पर्णपाती वनों से समृद्ध है, जहाँ साल (शोरिया रोबस्टा), सागौन, बीजा, साजा, हल्दू, महुआ तथा तेंदू जैसी प्रमुख वृक्ष प्रजातियाँ पाई जाती हैं। वनस्पति विविधता के साथ–साथ यह क्षेत्र वन्यजीव संरक्षण की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। बाघ, तेंदुआ, बारहसिंगा, गौर (इंडियन बाइसन), चीतल, सांभर, जंगली कुत्ता (ढोल) तथा अनेक प्रकार के पक्षी एवं सरीसृप यहाँ की पारिस्थितिकी का अभिन्न अंग हैं। कान्हा राष्ट्रीय उद्यान को विशेष रूप से दुर्लभ बारहसिंगा (हार्ड–ग्राउंड स्वैंप डियर) के संरक्षण हेतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है, जहाँ संरक्षण प्रयासों के फलस्वरूप इस प्रजाति की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है। इसी प्रकार अचानकमार अभयारण्य को राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण द्वारा बाघ रिजर्व घोषित किया गया है, जो क्षेत्रीय खाद्य श्रृंखला के शीर्ष परभक्षी के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, मैकाल क्षेत्र औषधीय एवं लघु वनोपज की दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। महुआ, तेंदूपत्ता, चिरौंजी, हर्रा, बहेड़ा, साल बीज तथा अनेक औषधीय जड़ी–बूटियाँ स्थानीय जनजातीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, जो आजीविका के साथ–साथ पारंपरिक चिकित्सा पद्धति का भी आधार प्रदान करती हैं।

मैकाल क्षेत्र अनेक जनजातीय समुदायों, विशेषतः गोंड, बैगा, कोरकू, भारिया एवं कोल का निवास स्थल है। जनगणना 2011 के आँकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र के अनेक जिलों में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या का अनुपात राज्य औसत से कहीं अधिक है, जो इस क्षेत्र की जनजातीय बहुलता को दर्शाता है। बैगा जनजाति को मध्य प्रदेश शासन द्वारा 'विशेष रूप से असुरक्षित जनजातीय समूह' के अंतर्गत मान्यता प्राप्त है, जो उनकी सामाजिक–आर्थिक भेद्यता को रेखांकित करता है। इन समुदायों की जीवन–शैली वनों के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। बैगा समुदाय की पारंपरिक 'बेवर' कृषि प्रणाली, जिसमें स्थानांतरित कृषि के माध्यम से भूमि की उर्वरता प्राकृतिक रूप से बनाए रखी जाती थी, यद्यपि अब शासकीय प्रतिबंधों के कारण सीमित हो गई है, फिर भी यह पारिस्थितिक संतुलन के परंपरागत ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। इसी प्रकार गोंड समुदाय की देव–स्थलों एवं पवित्र उपवनों की परंपरा, जिसके अंतर्गत कुछ वन क्षेत्रों को धार्मिक मान्यता के कारण अक्षुण्ण रखा जाता है, जैव विविधता संरक्षण का एक सांस्कृतिक तंत्र है जो आधुनिक संरक्षण विज्ञान के सिद्धांतों से भी मेल खाता है। जनजातीय समुदायों के पास औषधीय वनस्पतियों, वन्यजीव व्यवहार, मौसम पूर्वानुमान तथा सतत संसाधन प्रबंधन से संबंधित पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होने वाला विशद ज्ञान–भंडार उपलब्ध है। यह पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान न केवल स्थानीय जैव विविधता के दस्तावेजीकरण में सहायक है, बल्कि संरक्षण रणनीतियों के निर्माण में भी एक मूल्यवान संसाधन सिद्ध हो सकता है।

भारतीय वन सर्वेक्षण की समय–समय पर प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार मध्य भारत के अनेक वन–क्षेत्रों में वन आवरण की गुणवत्ता में निरंतर परिवर्तन देखा गया है। सघन वनों का खुले एवं विरल वनों में परिवर्तन, अवैध कटाई, तथा कृषि एवं बसाहट हेतु भूमि–उपयोग परिवर्तन इसके प्रमुख कारण हैं, जिससे न केवल कार्बन भंडारण क्षमता प्रभावित होती है, अपितु वन्यजीव आवासों की निरंतरता भी खंडित होती है। मैकाल क्षेत्र के समीपवर्ती भागों में कोयला, बॉक्साइट एवं चूना–पत्थर के विशाल भंडार उपलब्ध हैं, जिसके कारण विगत वर्षों में खनन गतिविधियों में उल्लेखनीय विस्तार हुआ है। खुली खदानों के परिणामस्वरूप बड़े वन–क्षेत्रों का सफाया हुआ है, भूजल स्तर प्रभावित हुआ है तथा वायु एवं जल प्रदूषण में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही खनन परियोजनाओं हेतु अनेक जनजातीय गाँवों का विस्थापन भी हुआ है, जिससे सामुदायिक सामाजिक–सांस्कृतिक ताना–बाना भी प्रभावित हुआ है। राष्ट्रीय राजमार्गों, रेल लाइनों एवं विद्युत पारेषण लाइनों के विस्तार ने वन्यजीव गलियारों को खंडित किया है, जिसके परिणामस्वरूप वन्यजीव–मानव संघर्ष की घटनाओं में वृद्धि दर्ज की गई है। बड़ी जलविद्युत परियोजनाओं एवं बांधों के निर्माण से नदी पारिस्थितिकी तंत्र भी प्रभावित हुआ है, विशेषतः नर्मदा बेसिन के ऊपरी भागों में। साथ ही, आधुनिकीकरण, शिक्षा के प्रसार तथा मुख्यधारा समाज

के साथ बढ़ते संपर्क के परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी में पारंपरिक ज्ञान एवं प्रथाओं के प्रति रुचि में कमी देखी जा रही है। वन भूमि पर अधिकारों संबंधी अनिश्चितता, विस्थापन तथा आजीविका के वैकल्पिक साधनों की ओर पलायन ने जनजातीय समुदायों की वनों पर निर्भरता तथा सांस्कृतिक पहचान दोनों को कमजोर किया है।

मैकाल क्षेत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैव विविधता एवं जनजातीय संस्कृति एक–दूसरे के पूरक हैं तथा इनका पृथक्करण संभव नहीं है। जहाँ एक ओर समृद्ध जैव विविधता जनजातीय समुदायों को भोजन, औषधि, आजीविका एवं सांस्कृतिक पहचान प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर इन समुदायों की पारंपरिक प्रथाएँ, धार्मिक मान्यताएँ एवं संसाधन प्रबंधन तकनीकें जैव विविधता के दीर्घकालिक संरक्षण में योगदान देती हैं। यह अंतर्संबंध एक प्रकार की पारस्परिक निर्भरता का निर्माण करता है, जिसमें यदि किसी एक तत्व, चाहे वह वन हो या सांस्कृतिक परंपरा, में क्षरण होता है, तो उसका प्रत्यक्ष प्रभाव दूसरे तत्व पर भी पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, वनों की कटाई से न केवल जैव विविधता की हानि होती है, बल्कि औषधीय वनस्पतियों पर आधारित पारंपरिक चिकित्सा ज्ञान भी क्रमशः लुप्त होता जाता है। इसी प्रकार जनजातीय समुदायों के विस्थापन से पवित्र उपवनों एवं देव–स्थलों के संरक्षण की परंपरा भी समाप्त हो जाती है, जिससे संबंधित वन–क्षेत्र अधिक भेद्य हो जाते हैं। संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना, यद्यपि जैव विविधता संरक्षण की दृष्टि से सकारात्मक कदम है, परंतु यदि इस प्रक्रिया में स्थानीय जनजातीय समुदायों की सहभागिता सुनिश्चित नहीं की जाती, तो यह उनके परंपरागत वन अधिकारों एवं आजीविका के साधनों को सीमित कर सकती है। अनेक अध्ययनों में यह तथ्य उभरकर आया है कि संरक्षण एवं समुदाय के हितों के बीच संतुलन स्थापित किए बिना दीर्घकालिक संरक्षण परिणाम प्राप्त करना कठिन है।

इन समस्याओं के समाधान हेतु यह आवश्यक है कि वन अधिकार अधिनियम 2006 का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करते हुए जनजातीय समुदायों के सामुदायिक वन अधिकारों को मान्यता दी जाए, संरक्षित क्षेत्रों के प्रबंधन में स्थानीय समुदायों की सहभागितापूर्ण संरक्षण पद्धति को अपनाया जाए, पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण कर इसे आधुनिक संरक्षण रणनीतियों के साथ समन्वित किया जाए, खनन एवं अधोसंरचना परियोजनाओं हेतु पर्यावरणीय एवं सामाजिक प्रभाव आकलन को अधिक कठोरता से लागू किया जाए, वन्यजीव गलियारों के संरक्षण एवं पुनर्स्थापन हेतु संरक्षित क्षेत्रों के मध्य पारिस्थितिक संपर्क सुनिश्चित किया जाए, तथा जनजातीय युवाओं हेतु पारंपरिक ज्ञान आधारित आजीविका के नए अवसर, यथा वन–आधारित पारिस्थितिक पर्यटन एवं जैविक उत्पादों का विकास किया जाए।

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मध्य भारत का मैकाल क्षेत्र एक महत्वपूर्ण जैव–सांस्कृतिक परिक्षेत्र है, जहाँ जैव विविधता एवं जनजातीय संस्कृति का दीर्घकालिक सह–अस्तित्व रहा है। अचानकमार, कान्हा–किसली एवं अमरकंटक जैसे संरक्षित क्षेत्रों की उपस्थिति के बावजूद, वनों की कटाई, खनन गतिविधियों, अधोसंरचना विकास तथा बढ़ते मानवीय हस्तक्षेप के कारण क्षेत्र में पारिस्थितिक असंतुलन एवं जैव–सांस्कृतिक क्षरण की समस्या गंभीर रूप धारण करती जा रही है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि जैव विविधता संरक्षण एवं जनजातीय सांस्कृतिक संरक्षण को परस्पर पृथक नीतिगत क्षेत्रों के रूप में न देखकर, इन्हें एक समन्वित जैव–सांस्कृतिक संरक्षण ढाँचे के अंतर्गत संबोधित किया जाना चाहिए। पारंपरिक जनजातीय ज्ञान एवं स्थानीय समुदायों की सक्रिय सहभागिता को संरक्षण नीतियों में सम्मिलित करना न केवल जैव विविधता के दीर्घकालिक संरक्षण हेतु अनिवार्य है, बल्कि यह जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक पहचान एवं आजीविका सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है। भविष्य में इस दिशा में विस्तृत क्षेत्रीय सर्वेक्षण एवं प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित शोध की आवश्यकता है, जिससे मैकाल क्षेत्र के सतत विकास हेतु प्रभावी एवं समावेशी नीतिगत ढाँचा विकसित किया जा सके।

1.शोध छात्र– समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, मध्यप्रदेश ईमेलः rohitpasi@148gmail.com

2.सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, प्रधानमंत्री उत्कृष्ट महाविद्यालय शासकीय तुलसी महाविद्यालय, अनूपपुर अनूपपुर, मध्य प्रदेश–484224 ईमेलः mit007bhushan@gmail.com

जैव विविधता

आधुनिक विकास और जैव विविधता पर संकट : एक तथ्यपरक विश्लेषण

–बबिता कुमावत

इक्कीसवीं सदी का वैश्विक परिदृश्य तकनीकी प्रगति, तीव्र आर्थिक विकास और शहरी विस्तार से परिभाषित होता है। आज आधुनिक विकास ने मानव जीवन को अभूतपूर्व सुविधाएँ प्रदान तो की हैं परंतु इसके समानांतर प्रकृति के संतुलन पर गहरा आघात भी किया है। इस संदर्भ में जैव विविधता गंभीर संकट से गुजर रही है, जो पृथ्वी पर जीवन का स्थायित्व और समग्रता का मूलाधार है। वर्तमान समय में विकास और पर्यावरण के मध्य संतुलन का प्रश्न न केवल वैचारिक विमर्श का रहा है बल्कि मानव अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य चुनौती बन गया है।

जैव विविधता से आशय पृथ्वी पर विद्यमान सभी प्रकार के जीवों की आनुवंशिक विविधताओं तथा उनके पारिस्थितिक तंत्रों से है। यह केवल जीवों की संख्या ही नहीं, बल्कि उनकी पारिस्थितिक प्रक्रियाओं व पारस्परिक संबंधों की जटिलता का द्योतक है। जैव विविधता शब्द का प्रयोग पहली बार 1986 में अमेरिका एंटोमोलॉजिस्ट ईओ विल्सन द्वारा अमेरिका फोरम ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में किया गया था। यह शब्द दो शब्दों का एक समूह है। जिसे हिंदी में भी व्यक्त किया गया है, जिसका अर्थ है कि जैव दुनिया में विविधता।

जैव विविधता से तात्पर्य प्रत्येक देश, क्षेत्र, महाद्वीप या विश्व स्तर पर होने वाले जीवों (पौधों और जीवों) की विविधता से है। इसमें सूक्ष्म जीवों से लेकर संपूर्ण जीव जगत तक सब कुछ शामिल किया गया है।

जैव विविधता का मुख्य कारण भौगोलिक वातावरण में विविधता है जिसको लाखों वर्षों से चली आ रही एक सतत प्रक्रिया का प्रतिफल माना गया है। इस पृथ्वी पर लगभग दो मिलियन जैविक प्रजातियां हैं और प्रत्येक जीव का पारिस्थितिक तंत्र में महत्व है। प्रकृति के अस्तित्व और रचना में जैव विविधता प्रमुख भूमिका निभाती है, इसलिए अगर यह कम हो जाता है, तो पर्यावरण चक्र में यह जीवों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालना शुरू कर देता है।

वर्तमान में जैव विविधता के प्रति सचेत होने का कारण जैव विविधता का तेजी से नुकसान है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसे निम्न तीन स्तरों में वर्गीकृत किया जाता है– प्रजातीय, आनुवंशिक और पारिस्थितिक तंत्र विविधता। जैव विविधता अपने बहुआयामी महत्त्व को बनाये रखे हुए है। यह न केवल पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखती है बल्कि खाद्य श्रृंखला को संचालित करती है। इसके साथ ही मानव जीवन के लिए आवश्यक संसाधनों–जैसे भोजन, औषधि और कच्चे पदार्थ की उपलब्धता सुनिश्चित करती है व जलवायु नियंत्रण में सहायक होती है। खाद्य फसलें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परागण पर निर्भर हैं, जो जैव विविधता का ही एक महत्वपूर्ण पहलू है।

आधुनिक विकास का तात्पर्य औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, तकनीकी नवाचार, वैश्वीकरण, अवसंरचनात्मक विस्तार से है। विकास की यह प्रक्रिया मुख्यतः आर्थिक वृद्धि को केंद्र में रखकर संचालित होने के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात से लेकर अब तक वैश्विक स्तर पर ऊर्जा की मांग में कई गुना बढोत्तरी हुई है।

जीवाश्म ईंधनों के व्यापक उपयोग, खनन गतिविधियों, परिवहन तंत्र व बड़े बांधों के निर्माण के विस्तार ने प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। वर्तमान समय में जैव विविधता पर संकट के बादल दिखाई दे रहे हैं। वैश्विक आकलनों के अनुसार अधिकांश प्रजातियाँ विलुप्ति के खतरे में हैं। पिछले 50 वर्षों में वन्यजीवों की आबादी में काफी गिरावट दर्ज की गई है।

समुद्री पारिस्थितिक तंत्रों का लगभग भाग गंभीर रूप से प्रभावित है। विश्व के कई आर्द्रभूमि क्षेत्र नष्ट हो चुके हैं। यद्यपि भारत विश्व के 17 मेगाडायवर्स देशों में शामिल है और यहाँ लगभग 8 प्रतिशत वैश्विक जैव विविधता पाई जाती है, फिर भी तीव्र विकास गतिविधियों के कारण कई प्रजातियाँ संकटग्रस्त हो रही हैं।

आधुनिक विकास के कारण आज शहरीकरण हो रहा है। इसी तरह औद्योगिक विस्तार के कारण प्राकृतिक आवास तेजी से नष्ट हो रहे हैं। सड़क निर्माण, कृषि विस्तार, वनों की कटाई ने अनेक प्रजातियों के जीवन–स्थलों को समाप्त कर दिया है। जलवायु परिवर्तन होने व औद्योगिक गतिविधियों के विकास से उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों के कारण वैश्विक तापमान में

भी काफी वृद्धि हो चुकी है। इससे प्रजातियों के अस्तित्व, प्रजनन चक्र व वितरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसी तरह मृदा प्रदूषण, जल और वायु प्रदूषण जैव विविधता के लिए गंभीर खतरा है। समुद्रों में प्लास्टिक प्रदूषण के कारण न केवल लाखों समुद्री जीव प्रभावित हो रहे हैं बल्कि वन्यजीवों का अवैध शिकार और तस्करी कई प्रजातियों को विलुप्ति के कगार पर ले जा रही है।

स्थानीय प्रजातियों के अस्तित्व के लिए बाहरी प्रजातियां खतरा बनती जा रही हैं, जिससे पारिस्थितिक संतुलन भी बिगड़ता है। जैव विविधता और जलवायु परिवर्तन एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। जैव विविधता के महत्वपूर्ण अवयवों को उचित महत्व देने से संरक्षण किया जा सकता है। इसके कई अप्रत्यक्ष लाभ हैं जैसे– पारिस्थितिक की सेवाएं जैव संसाधनों का संरक्षण तथा सामाजिक लाभ।

जल संसाधनों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है, जल के अपवाह तंत्र क्षेत्र में वनों की उपस्थिति से जल चक्र के अनुरक्षण के साथ–साथ जल प्रवाह का नियमन एवं नियंत्रण होता रहता है। इससे बाढ़ व सूखे के बीच संतुलन बनाए रखने में मदद मिलती है, इसमें भूमिगत जल स्तर भी बना रहता है और सूखे की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है।

भूमिगत जल स्तर के काम होने का असर प्राकृतिक निवास स्थल पर पड़ता है। पिछले वर्षों में पूर्वी तट में जल स्तर में काफी कमी हुई है, जिससे इस क्षेत्र को लगातार बाढ़ में सूखे की चपेट का सामना करना पड़ता है। जल संसाधनों का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है, यदि हम जैव विविधता के संरक्षण पर ध्यान देंगे तो मिट्टी की संरचना सुरक्षित रखने में मदद मिलती है तथा मिट्टी में आर्द्रता और पोषक तत्व धारण करने की क्षमता बनी रहती है। पारस्थितिकी संरक्षण के धारणीय प्रयास के अभाव में मिट्टी का अपरदन होता रहता है। मिट्टी के खारेपन, पोषक तत्वों की ऊपरी परत के नष्ट होने से मिट्टी की उत्पादकता नष्ट होती है, मिट्टी के निर्माण में पेड़ पौधे सहायक होते हैं, पेड़ों की जड़ों के माध्यम से पानी तथा पोषक तत्व मिट्टी में गहराई तक पहुँच जाते हैं। जैव पदार्थ द्वारा तैयार उत्सर्जी पदार्थ से सूक्ष्म जैविक गतिविधियों में बढ़ोत्तरी होती हैं।

पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए पोषक तत्वों के चक्रण की अत्यंत आवश्यकता है। जैव पदार्थों के सड़ने से मिट्टी में पोषक तत्व बढ़ते हैं, नाइट्रेट बैक्टीरिया तथा नाईट्रिफाईंग बैक्टीरिया के कार्य अलग होने के कारण सूक्ष्म जीवों में विविधता आवश्यक है। कई प्रजातियाँ तापमान में वृद्धि होने से अपने प्राकृतिक आवासों को छोड़ने को विवश हो रही हैं।

तापीय तनाव के कारण न केवल प्रवाल भित्तियाँ तेजी से नष्ट हो रही हैं बल्कि हिमालयी क्षेत्र में ग्लेशियरों के पिघलने से पारिस्थितिक तंत्र भी प्रभावित हो रहे हैं। जैव विविधता का संरक्षण जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने में सहायक होने के कारण ही महासागर और वन कार्बन अवशोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में औद्योगिक विकास, तीव्र नगरीकरण व अवसंरचना विकास के कारण जैव विविधता पर दबाव बढ़ा है।

निम्न कारकों ने पारिस्थितिक संतुलन को प्रभावित किया है–वन क्षेत्र में कमी, नदियों का प्रदूषण, खनन गतिविधियों का विस्तार, कृषि में रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग। उदाहरण के रूप में हिमालयी क्षेत्र व पश्चिमी घाट विकास परियोजनाओं के कारण अनेक स्थानिक प्रजातियाँ संकट में हैं।

जैव विविधता संरक्षण के लिए कानूनी प्रावधान भी बनाए गए हैं।

जैव विविधता अधिनियम, 2002

वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972

5 जून 1992 को ब्राजील में जैव विविधता संधि के लागू किये जाने के पश्चात विश्व भर के देशों ने अपने–अपने संरक्षण के लिए कानून बनाने की शुरुआत की। भारत में भी इसी के तहत जैव विविधता अधिनियम 2002 अस्तित्व में आया। यह अधिनियम जैव विविधता के संवर्धन, संरक्षण, एवं उसके धारणीय विकास को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

इस अधिनियम के तीन प्रमुख उद्देश्य रहे हैं–

1. जैव विविधता का संरक्षण
2. इसके घटकों का सतत उपयोग
3. आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से होने वाले लाभों का उचित और न्याय संगत बंटवारा।

अधिनियम की धारा 36 केंद्रीय सरकार द्वारा जैव विविधता के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय कूटनीतियों और योजनाओं को विकसित करने के संबंध में बताती है। अधिनियम की धारा 38 विलुप्त प्रजातियों को अधिसूचित करने की केंद्र सरकार की शक्ति के बारे में बताती है। इस धारा के तहत केंद्रीय सरकार की संबंधित राज्य सरकार से परामर्श कर समय–समय पर प्रजातियों को, जो कि विलुप्त होने के कगार पर हैं या भविष्य में जिनका विलुप्त होना संभावित है, को विलुप्त प्रजाति के रूप में अधिसूचित कर सकेगी ।

धारा 39 केंद्र सरकार को जैविक सामग्री को सुरक्षित

अभिरक्षा में रखने के संग्रहालयों को अभिहित करने की शक्ति प्रदान करती है।

धारा 40 के तहत केंद्रीय सरकार राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण के परामर्श से राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किन्हीं ऐसी मदों को लागू नहीं होंगे जिसके अंतर्गत वाणिज्यिक रूप में व्यापार के लिए जैव संसाधन सम्मिलित है। जैव विविधता अधिनियम की धारा 8 राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण की स्थापना का प्रावधान करती है, जबकि धारा 22 राज्य स्तर पर राज्य जैव विविधता बोर्ड की स्थापना के प्रावधानों के बारे में बताती है। अधिनियम की धारा 22(2) संघ राज्य क्षेत्र के लिए राज्य जैव विविधता बोर्ड के गठन की अनुमति नहीं देती है। अधिनियम की धारा 13 राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण के तहत कार्यों के प्रभावी और कुशल निर्वहन के लिए समितियां बना सकती है। धारा 19 में कोई भी व्यक्ति जो भारत में पाए जाने वाले जैव संसाधन या उससे सहयोजित ज्ञान को, अनुसंधान या वाणिज्यिक उपयोग के लिए या जैव सर्वेक्षण और जैव उपयोग के लिए भारत से प्राप्त जैव संसाधन से संबंधित किसी अनुसंधान के परिणामों के अंतरण को प्राप्त करना चाहता है तो निश्चित प्रारूप और फीस के साथ राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण को आवेदन कर सकता है।

भारत में राष्ट्रीय परियोजनाएँ

प्रोजेक्ट टाइगर,प्रोजेक्ट एलीफेंट, अंतरराष्ट्रीय पहल, जैव विविधता सम्मेलन, सतत विकास लक्ष्य निर्धारित किये गए हैं। स्थानीय समुदाय और आदिवासी प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीते हैं। जैव विविधता संरक्षण में उनका पारंपरिक ज्ञान अत्यंत उपयोगी है। इसलिए संरक्षण नीतियों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है। वर्तमान में सतत विकास की अत्यंत आवश्यकता है।

वर्तमान संकट का समाधान सतत विकास में निहित है। इसका उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण और आर्थिक विकास के बीच संतुलन स्थापित करना है। संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग व नवीकरणीय ऊर्जा का विस्तार करना है। इसके अलावा हरित प्रौद्योगिकी का विकास तथा पर्यावरणीय प्रभाव आकलन का सुदृढ़ क्रियान्वयन करना है।

आने वाले समय में जैव विविधता संरक्षण के सामने अनेक चुनौतियाँ भी होंगी जिनमें जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की बढ़ती मांग व जनसंख्या वृद्धि प्रमुख है। किंतु विज्ञान और तकनीक के माध्यम से समाधान भी किया जा सकता है, जैसे–पारिस्थितिक पुनर्स्थापन, संरक्षण जीव विज्ञान, जीन बैंक।

उपसंहार

आधुनिक विकास के कारण मानव सभ्यता नई ऊँचाई तक पहुँची है, वहीं जैव विविधता के लिए गंभीर संकट भी उत्पन्न हुआ है। उपलब्ध तथ्यों और आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि वर्तमान विकास मॉडल में परिवर्तन नहीं किया गया, तो भविष्य में मानव जीवन और पारिस्थितिकी संतुलन दोनों ही खतरे में पड़ सकते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि विकास की दिशा को पुनः परिभाषित किया जाए, जिसमें प्रकृति के साथ संतुलन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। जैव विविधता के संरक्षण को सिर्फ पर्यावरणीय मुद्दा नहीं कहा जा सकता बल्कि इसको मानव अस्तित्व की अनिवार्य शर्त कहा है।

–(सहायक प्रोफेसर)
संप्रति
सहायक प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर(राजस्थान)



दिल दहलाने लगा है शोर

–संतोष बंसल

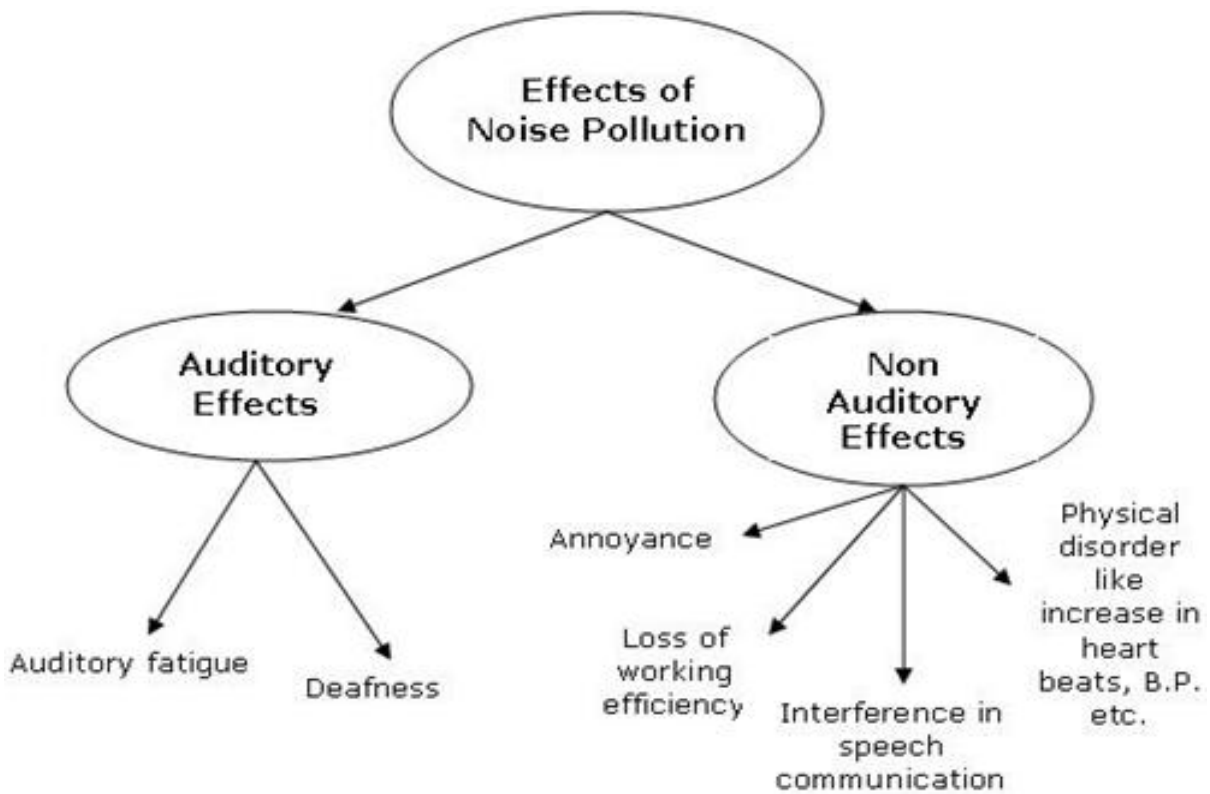
➟ पिछले कुछ दिनों से ध्वनि प्रदूषण पर लिखने का सोच रही थी, क्योंकि पिछ्ले दस सालों में यह बढ़ता हुआ शोर बर्दाश्त से बाहर होता जा रहा है। अब काफी तेज आवाज वाले बूम बॉक्स एवं लाउडस्पीकर आ गए हैं, जिन्हें ट्रकों या छोटे वाहनों पर लगाकर लोग सड़कों पर चलते हैं। शादियों के सीजन में इनकी आवाज इतनी तेज होती है कि इससे उत्पन्न कम्पन से थरथराहट होती है। अभी पिछले दिनों एक रात अचानक हमारे घर के खिड़की –दरवाजे जोर–जोर से हिलने लगे, लगा जैसे भूकंप आ गया हो। किन्तु वह एक बारात के गुजरने से हो रहा था, जिसमें बूम बॉक्स बजाया जा रहा था। इसकी आवाज असहनीय थी। कुछ क्षणों के उपरान्त ही उससे घबराहट और बैचेनी पैदा होने लगी, हृदय की धड़कन तेज हो गईं। हमने उठकर फटाफट खिड़कियों के शीशे बंद किये, जिससे वह आवाज कुछ मद्धिम हुई। और जब बारात वहां से चली गई, तब मैं सोचने लगी कि शादी–ब्याह में यह कब से बजाया जाने लगा? पहले बैंड–बाजा–बारात होता था, जिस पर बाराती थिरकते थे। उसमें बजने वाले वाद्य यंत्रों में ढ़ोल और छोटे–बड़े बाजे या नगाड़े होते थे। उनका स्वर मन में उमंग और उत्साह भरता था और सारे वातावरण को एक उत्सव में तब्दील कर देता था। आजकल जो बूम बॉक्स का चलन शुरू हुआ है, यह मन में भय पैदा करता है। खास तौर पर बच्चों और वृद्धों के स्वास्थ्य के लिए यह एक खतरा बन गया है। बेचारे बच्चे तो कुछ जानते नहीं, वे सहम कर गोद में दुबक जाते हैं। युवा पीढ़ी चाहे इससे मुग्ध होती हो, किन्तु हमारे लिए यह एक अनियंत्रित शोर है। जिससे दिल्ली जैसे महानगरों में रहने वाले लोग, वायु और जल प्रदूषण के साथ ध्वनि प्रदूषण भी झेल रहे हैं और हार्ट अटैक के साथ ही बहुत सी अन्य बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। इतना शोर जीव –जंतुओं के लिए भी खतरनाक है, इसीलिए बहुत से पक्षी भी नदारद हो चुके हैं। 'वुवर' नमक फिल्म में दर्शाया गया है कि जो आवाजें मनुष्य को परेशान करती हैं, वे जानवरों को कई गुना अधिक प्रभावित करती हैं क्योंकि उनकी सुनने की क्षमता अधिक होती है, इसीलिए वे शांत वातावरण में रहना और जीना पसंद करते हैं।

वस्तुत शोर पर कोई कानूनी लगाम नहीं है, जिससे इसे प्रतिबंधित किया जा सके। कुछ सालों से सावन माह में भी काँवड़ के नाम पर भक्ति प्रदर्शन में 'बूम बॉक्स 'का इस्तेमाल धड़ल्ले से किया जा रहा है। जब ये कांवड़िये जल लेकर हरिद्वार से आते हैं, तो तेज ड्रम के धूम–धड़ाके के साथ फूहड़ किस्म के गीत लगा दिए जाते हैं और शिवरात्रि के आखिरी सप्ताह में इनकी तादाद इतनी अधिक हो जाती है कि सड़कों पर इन्हीं का शोर सुनाई देता है। दो साल पहले जब मैं हरिद्वार गयी थी, वहां सड़क पर खड़े बूम बॉक्स की संख्या देख चकरा गयी। जब ये यहाँ इक्कट्ठे बजते होंगे, तो एकबारगी गंगा की धारा भी शोर से दहल जाती होगी। फिर इंसान इतने शोर में कैसे रहें और सहें ? यह वर्तमान का एक बुनियादी सवाल है। न केवल परिपक्व आयु वाले लोगों के लिए यह समस्या बन चुका है, बल्कि मासूम बच्चे भी किस तरह अनजाने में ही इस शोर के शिकार हो रहे हैं ? यह मैंने अभी दिल्ली के एक नए मॉल 'एलेगेंट' में, वहां बने 'टाइम जोन' में पहुंचकर जाना। छोटे–छोटे बच्चों को लेकर आये अभिभावक, उस असहनीय शोर में उन्हें वीडियो गेम्स खिला रहे थे। प्रत्येक डिजिटल गेम्स का अपना शोर तो था ही, तिस पर बैक ग्राउंड म्यूजिक भी चल रहा था। उसके बावजूद 'बोलिंग' के स्क्रीन पर चलने वाला पाश्चात्य गीत–संगीत, कुल मिलाकर कान–फोडू शोर था वहां। वह यहाँ उपस्थित बच्चों को किस तरह प्रभावित कर रहा होगा ? यह शायद गेम्स में मग्न बच्चे बता नहीं पा रहे हों, किन्तु जिसे एक धीमा जहर कहना उपयुक्त होगा। अपने बच्चों को व्यस्त रखने की धुन में माता–पिता उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को किस तरह हानि पहुंचा रहे हैं? यह एक भुक्तभोगी व्यक्ति ही बता सकता है। डॉक्टर्स के अनुसार अन्य वाद्यों की अपेक्षा बूम बॉक्स का शोर 85 से 110 से अधिक डेसिबल तक होता है, जो बेहद खतरनाक है। लगातार तेज आवाज से कान की नसें क्षतिग्रस्त हो सकती हैं, जिससे बहरापन या 'टिनिटस' (कानों में सीटी बजना) हो सकता है। तेज 'साउंड ' से अचानक 'हार्ट बीट' बढ़ती है, जिससे ब्लड प्रेशर में उतार चढ़ाव होता है और हार्ट अटैक का खतरा बढ़

जाता है।

वस्तुतः दिल्ली में शोर का स्तर इतना बढ़ गया है कि इंसानों की सुनने की क्षमता प्रभावित हो गई है। इसके साथ शहरी क्षेत्रों में दिन के समय 55 डेसिबल से अधिक शोर होने पर चिड़चिड़ापन और तनाव पैदा होता है एवं रात के वक्त 40 डेसिबल से अधिक शोर से ब्लड प्रेशर और हृदय रोगों का खतरा उत्पन्न होता है। ''ऑकलैंड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने अध्ययन में पाया कि दिल्ली में 90 फीसदी इलाकों में शोर का स्तर सुरक्षित सीमा (55 डेसिबल) से कहीं अधिक है। यह सीमा 80 –90 डेसिबल दर्ज की गयी। 64 फीसदी लोगों में सुनने की क्षमता में कमी सीधे तौर पर शहरी शोर से जुडी है। 35 से 50 फीसदी लोग उच्च रक्तचाप और नींद की कमी जैसी समस्याओं से ग्रसित पाए गए। ''इसके अतिरिक्त, '' ग्रीस विश्वविद्यालय की रिपोर्ट में चेतावनी दी गयी कि अनियंत्रित शोर का असर सिर्फ कानों पर नहीं, बल्कि दिल और दिमाग पर भी पड़ रहा है। जब कोई व्यक्ति लगातार 100 डेसिबल या उससे अधिक के शोर के संपर्क में आता है, तो शरीर में 'स्ट्रेस हार्मोन' (जैसे कोर्टिसोल) का स्तर अचानक बढ़ जाता है। यह तनाव मस्तिष्क की रक्त वाहिकाओं को संकुचित कर देता है, जिससे स्ट्रोक का खतरा कई गुना बढ़ जाता है।'' इस प्रकार अत्यधिक शोर के कारण ब्लड प्रेशर बढ़ने से अचानक 'कार्डियक अरेस्ट' की आशंका बढ़ जाती है, यह हम दिल्ली में युवाओं में बढ़ते 'हार्ट अटैक' से देख ही रहे हैं। इसके अलावा आजकल युवाओं ने कानों में लगातार भिनभिनाहट की शिकायत दर्ज की है एवं उन्हें दिल दहलाने वाले अधिक शोर के बाद थकावट भी बहुत महसूस होती है। कुछ लोगों में तो सुनने की क्षमता भी खत्म हो गई है, जो एक बड़ी चेतावनी है। ''डब्ल्यू एच ओ के अनुसार, 80 डेसिबल वह सुरक्षित सीमा है, जहाँ एक व्यक्ति सप्ताह में चालीस घंटे रह सकता है। लेकिन जैसे ही शोर का स्तर बढ़ता है, सुरक्षित समय घट जाता है। संगठन ने बताया कि हर तीन डेसिबल की बढ़ोत्तरी पर सुरक्षित रहने का समय आधा हो जाता है।'' (रिपोर्ट– दिल्ली में शोर से सुनाने की क्षमता प्रभावित हो रही, हिंदी हिन्दुस्तान अखबार, 18 मार्च, 2026)

दरअसल भारतीय संस्कृति त्योहारों और उत्सवों से परिपूर्ण है एवं यहाँ विविध धर्मों और विभिन्न जातियों के लोग निवास करते हैं। प्रत्येक के अपने



अलग–अलग रिवाज और मान्यताएं हैं एवं सभी को उन्हें मनाने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। चूँकि देश की राजधानी दिल्ली में सभी राज्यों के लोग निवास करते हैं और प्रत्येक का जलसा और जुलूस भी होता है। नतीजतन यहाँ हर समय ट्रैफिक जाम की समस्या तो है ही, उससे धुंआ और ध्वनि प्रदूषण भी बहुत होता है। जिससे दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित बहुत चिंताजनक रहती है और दूषण–प्रदूषण के आंकड़े बेहद भयावह रहते हैं। तथा नवरात्र, रामलीला, दिवाली और अन्य धार्मिक उत्सवों के दौरान इस प्रदूषण में अधिक इजाफा हो जाता है, इसीलिए स्थिति अधिक गंभीर हो जाती है। लोग चेतावनी के बावजूद भी बाज नहीं आते और पटाखों तथा बमों को खूब फोड़ते हैं। इसीलिए दिवाली के दौरान यह प्रदूषण इतना अधिक हो जाता है कि सांस लेना भी दूभर हो जाता है। इन सबके साथ ही आजकल दिल्ली में सभी स्थानों चार मंजिला नए भवन निर्माण अत्यधिक मात्रा में हो रहे हैं, जिसके लिए पुराने मकानों को तोड़ने वाले सयंत्र भी पूरे मोहल्ले में शोर और धूल का बवंडर पैदा करते हैं। और फिर पूरी सर्दी धुल, धुंध और धुंएँ से उपजा यह प्रदूषण बच्चों और बूढ़ों को अनेक व्याधियों का शिकार बनाता है। इस तरह लोगों में अनिद्रा, बैचेनी,घबराहट और ब्लड प्रेशर जैसी शिकायतें बढ़ती जा रही हैं और जाने–अनजाने दिल्ली का प्रत्येक निवासी किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त एवं त्रस्त है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सीपीसी बी) और दिल्ली प्रदूषण नियंत्रण समिति (डीपीसीसी) के अनुसार, '' दिल्ली के अधिकांश इलाकों में दिन में औसतन 60 से 75 और रात में 55 से 65 डेसिबल की ध्वनियाँ बनी रहती हैं। यह सुरक्षित मानकों से 25 यूनिट तक अधिक है। रोहिणी, कश्मीरी गेट, आईटीओ, आनंद विहार और करोलबाग जैसे व्यस्त इलाकों में शोर अक्सर 80 डेसिबल से अधिक पाया जाता है।'' (लेख–त्यौहार का शोर से कैसा सरोकार, हिंदी हिन्दुस्तान अखबार, 22 मार्च, 2026– श्री शशि शेखर)

अंततः यह सवाल भी उठता है कि पुराने जमाने के लोग भी तो वाद्य यंत्र बजाते थे, अब क्यों रोक लगाईं जानी चाहिए। इसका सीधा जवाब है कि एक तो तब लोगो की संख्या बहुत कम थी। लोग टीलों–कबीलों में रहते थे, जिनका अपना एक समूह होता था। अब जबकि अब जनसँख्या विस्फोट हो चुका है, जिसका अधिक वजन शहरों को झेलना पड़ रहा है। जहाँ रोजगार है, वहां 'पापुलेशन 'का अत्यधिक दवाब है। दूसरे प्राचीन युग में ढोल, मंजीरों, मृदंगों और शंखों का इस्तेमाल किया जाता था, जो मधुर संगीत का अहसास कराते थे। उन से तन–मन को सुखद शान्ति मिलती थी, उनमें वर्तमान बूम बॉक्स अथवा डीजे जैसा तीव्र शोर नहीं होता था। जबकि तेज आवाज फैलाने वाले यंत्र कैसा माहौल बना देते हैं, यह सभी जानते हैं। इसीलिए अब वक्त आ गया है कि हम धर्म को प्रदर्शन की वस्तु न बनाएं, उसका वास्तविक अर्थ समझें। उनके मूल्यों को आचरण और चरित्र निर्माण में लाएं, जिससे एक बेहतर समाज और मानवता का विकास हो। हमारे पुरखों और पूर्वजों ने रीति–रिवाज और त्योहारों को प्रकृति के सन्निकट लाने के लिए किया था, जिससे तन–मन की बेहतरी हो न कि इनकी आड़ में मनुष्य की बर्बादी हो और वह रुग्ण जीवन बिताये । संस्कृत की तमाम ध्वनियाँ विज्ञान पर आधारित हैं, जिनसे वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा फैलती है। जैसे ॐ की ध्वनि सांसो की गति को नियंत्रित करने के साथ, फेफड़ों और हृदय को भी स्वस्थ रखती है। अंततः यह प्रश्न भी उठना स्वाभाविक हो कि ऐसी खतरनाक प्रवृति पर रोक का प्रावधान है या नहीं ? भारतीय न्याय संहिता की धारा 270, 292 और 293 के तहत, इसे उपद्रव फैलाने की श्रेणी में रखा जा सकता है। तथा बूम बॉक्स की जब्ती के साथ, उन्हें बजाने वालों को भी हिरासत में लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त निश्चित सीमा से अधिक ध्वनि फैलाने पर एक लाख रूपये तक का जुर्माना संभव है और तेज पटाखा चलाने पर दस से पचास हजार रूपये तक का जुर्माना लागू होता है लेकिन हमारे देश में इन कानूनों का पालन कौन करता है ? या यहाँ इन्हें अमल में लाना ही बेहद दुष्कर कार्य है।

A1/ 7 Mianwali Nagar
Paschim Vihar
Delhi -110087
Mobile No-8860022613

विरासत

धर्म, प्रकृति और पर्वत : सम्मेद शिखरजी का ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व

–डॉ. अमित चन्ना

⟶ भारत की आध्यात्मिक परंपरा में तीर्थ केवल पूजा का स्थान नहीं, बल्कि चेतना को परिवर्तित करने वाले वे केन्द्र हैं जहाँ मनुष्य स्वयं के भीतर झाँकने का सार्थक प्रयास करता है। जैन धर्म में ऐसे पवित्र स्थलों की एक लंबी सूची है, किंतु तीर्थों के शिरोमणि के रूप में जिस तीर्थस्थल का नाम सर्वाधिक श्रद्धा से लिया जाता है,वह है सम्मेद शिखरजी। जैन मान्यता के अनुसार सृष्टि की रचना के समय से ही दो तीर्थ सम्मेद शिखर जी और अयोध्या अस्तित्व में थे, यानी इन दोनों तीर्थों का अस्तित्व सृष्टि के समानांतर है। झारखंड के गिरिडीह जिले में स्थित यह स्थल न केवल प्राकृतिक सौंदर्य का प्रतीक है, बल्कि जैन परंपरा में मोक्षमार्ग का महानतम साक्षी भी है। उल्लेखनीय है कि यहाँ 20 तीर्थंकरों के मोक्षकल्याणक संपन्न हुए अर्थात यहाँ 24 में से 20 तीर्थंकरों ने इसी स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया। जैन परंपरा में सम्मेद शिखर को सिद्धक्षेत्र, क्षेत्रों का क्षेत्र, मोक्ष भूमि का शिरोमणि और तपस्वियों का तीर्थराज कहा जाता है। सम्मेद अर्थात 'एकाग्रता' या 'सम्यक' जिसका अर्थ है सही ज्ञान और शिखर चोटी के लिए प्रयोग होता है। शिखरजी का शाब्दिक अर्थ हुआ 'एकाग्रता का शिखर'। जैन परंपराओं के अनुसार वह पवित्र पर्वतीय चोटी जहां तीर्थंकरों ने एकाग्र होकर मोक्ष प्राप्त किया अर्थात तीर्थंकरों की सभा का शिखर।

झारखंड राज्य के छोटा नागपुर पठार के पूर्वी छोर पर स्थित एक पर्वत श्रृंखला है जिसे पारसनाथ पहाड़ियाँ कहा जाता है। ये पहाड़ियाँ लगभग 200 वर्ग किलोमीटर में फैली हुईं हैं और इस पहाड़ी श्रृंखला की उच्चतम चोटी लगभग 1365 मीटर (4478 फीट) है। इसी चोटी पर तीर्थराज सम्मेद शिखरजी स्थित हैं। 23वें जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के नाम पर पहाड़ी का नाम पारसनाथ रखा गया है। जैन आगमों और परंपरागत ग्रंथों के अनुसार यह पर्वत सुवर्णभूमि के प्राचीन क्षेत्र में स्थित रहा है। भट्टारक जिनसेन, हेमचंद्र, पुण्यविजय और अन्य परंपरागत आचार्यों ने भी इसे सिद्धक्षेत्र के रूप में वर्णित किया है। प्राचीन शिलालेखों, यात्रावृत्तों और जैन तीर्थावलियों में सम्मेद शिखरजी का विस्तृत उल्लेख मिलता है। जैन आगम ग्रंथ, ज्ञात्रधर्मकथा, कल्पसूत्र, पार्श्वनाथचरित और श्वेतांबर एवं दिगंबर तीर्थावलियों में यह उल्लेख मिलता है कि सम्मेद शिखर जैसे सिद्धक्षेत्रों में साधक की आत्मा सहज रूप से उर्ध्वगमन की ओर उन्मुख होती है। आज भी अनेक मुनिगण इस पर्वत पर दीर्घकालीन तप, विपश्यना, निराहार साधना, और समायिक करते हैं। उनके अनुभवों में सम्मेद शिखर की आध्यात्मिक आवृत्तियाँ अद्भुत और गहन मानी गई हैं ।

पारसनाथ पर्वत विशाल और वनाच्छादित है, इसकी ऊँचाई और चौराहों पर बिखरे स्नोल–ढाँचे, प्राकृतिक सुंदरता और तीर्थ–संरचनाएँ इसे ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण बनाती हैं। ब्रिटिशकालीन और आधुनिक भू–राजनीतिक लेखों में भी इसका उल्लेख मिलता है कि यह क्षेत्र संतो, आदिवासी समूहों और जैन तपस्वियों–संप्रदायों के मिलन का स्थल रहा है। जैन धर्म की दोनों परंपराओं (दिगंबर और श्वेतांबर) में यह स्थल समान रूप से श्रद्धा का केंद्र है। जैन मान्यताओं के अनुसार सम्मेद शिखर जी पाँचवा ऐसा स्थल है जो जैन समुदाय के श्वेताम्बर पाँच तीर्थ में सम्मिलित है, अन्य तीर्थ हैं अष्टपद(तिब्बत), गिरनार और शत्रुंजय(गुजरात), दिलवाड़ा (राजस्थान)।

सम्मेद शिखरजी पहुँचने के लिए निकटतम रेलवे स्टेशन इसरी–पारसनाथ है जो दिल्ली –गया–कोलकाता हावड़ा रेल लाइन पर स्थित है। इसरी–पारसनाथ की दूरी मधुबन(सम्मेद शिखरजी यात्रा–परिक्रमा का आधार क्षेत्र) से लगभग 23 किलोमीटर है। इसके अतिरिक्त हवाई मार्ग से आने के लिए निकटतम हवाई अड्डा देवघर(104कि.मी) और रांची(195 कि.मी) हैं।

सम्मेद शिखरजी तक पहुँने के दो मार्ग हैं एक नीमिया घाट से और दूसरा मधुवन होकर। नीमिया घाट पारसनाथ पर्वत के दक्षिण की तरफ है। यहाँ से यात्रा प्रारंभ करने से सबसे पहले पार्श्ववनाथ टोंक आती है और इस तरह से ये वंदना उल्टी दिशा से प्रारंभ मानी जाती है। पूरी यात्रा में अठारह मील का सफर तय करना पड़ता है। मधुवन से भी इतनी ही दूरी है। अधिकांश यात्री मधुवन से ही यात्रा आरंभ करते हैं। इसका कारण है की मधुवन क्षेत्र मे प्राप्त सुविधाएं।

मधुवन में अनेक धर्मशालाएँ, उपासना स्थल और भोजनालय हैं जो यात्रियों की जरूरतों को पूरा करने में सक्षम हैं। मधुबन से सम्मेद शिखरजी यात्रा कुल 27 किलोमीटर की है, जिसमें 9 किलोमीटर चढ़ाई, 9 किलोमीटर पर्वत वंदना (परिक्रमा) और 9 किलोमीटर उतरना शामिल है। सम्पूर्ण यात्रा में दस से बारह घंटे का समय लगता है। शिखर पर रुकने का कोई विकल्प नहीं है। यह यात्रा शारीरिक कष्ट से अधिक मानसिक रूपांतरण की यात्रा है। मार्ग में जंगल, घाटियाँ, चट्टानें और प्राकृतिक ध्वनियाँ मन को एक अलग दुनिया में ले जाती हैं। यात्रा के मुख्य पड़ाव हैं गुंजन जंगल, शांतिनाथ व कुंतुनाथ टोंक, जलबियाणा स्थल, महावीर टोंक, पारसनाथ टोंक।

श्रद्धालु पूरी यात्रा को वंदना(परिक्रमा) के रूप में करते हैं। यह परंपरा हजारों वर्षों से निरंतर चल रही है। पर्वत पर 31 टोंक हैं जिनमे से 20 तीर्थंकरों की स्मृति में 27 टोंक हैं और अन्य टोंक गणधर एवं साधुओ के हैं। टोंक एक मंदिर स्मारक है जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ किसी संत ('सिद्ध') ने ध्यान किया था और मोक्ष प्राप्त किया था। प्रत्येक टोंक एक तीर्थंकर की दिव्य–साधना एवं सिद्धत्व–प्राप्ति का प्रतीक। जैन समुदाय के लिए यह यात्रा केवल दर्शनीय नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और कर्म–निष्कर्ष की साधना है। कई जैन साधु यहाँ दीर्घकाल तक ध्यान और तपस्या के लिए आते रहे हैं। पारंपरिक याचिकाओं, अनुष्ठानों और तीर्थ श्रद्धा का यह केंद्र धार्मिक अभ्यास और सामुदायिक पहचान का भी संकेत है। शिखरजी की परंपरा में तीर्थ–परिक्रमा (यात्रा), टोंकों पर स्तुति, व्रत एवं ध्यान–समारोह प्रमुख हैं।

शिखरजी की पारंपरिक तीर्थयात्रा पैदल–मार्गों और छोटे–छोटे टोंक चिह्नों से होकर होती है। जैन परिवार और तीर्थयात्री आमतौर पर पास के मधुवन, गिरिडीह या पारसनाथ स्टेशन से आते हैं। मधुवन में अनेक धर्मशालाएँ, अतिथिगृह और बेसिक भोजन–व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं। तीर्थ–परंपरा के अनुरूप, कई श्रद्धालु पूरे आध्यात्मिक अनुष्ठान और संयम के साथ पर्वतारोहण करते हैं। पर्यटन सुविधाओं के विस्तार के साथ ही अवसंरचना, मार्ग और नागरिक सुविधाओं की माँग भी बढ़ी है, परन्तु तीर्थीय पवित्रता और पारंपरिक व्यवहार बनाए रखने के अनुशासन पर जैन समुदाय ने विशेष बल दिया है।

सम्मेद शिखर की पहचान केवल पर्वत–यात्रा तक सीमित नहीं है। यह स्थान जैन धर्म की अरण्य परंपरा का सबसे जीवंत केंद्र है। जंगल की शांति, एकांत और आकाश की व्यापकता साधक को प्रकृति के साथ गहराई से जोड़ देती है। यहाँ के पर्यावरण में मौन, एकांत, संतुलन, वन–ऊर्जा जैसे अनेक तत्व साधना की सहजता बढ़ाते हैं। यही कारण है कि अनगिनत मुनिराजों ने इसे अपनी तपोभूमि के लिए चुना। पर्वत के हर पत्थर में साधना की छाप महसूस होती है। जैव–विविधता का अत्यंत समृद्ध क्षेत्र, पारसनाथ पहाड़ियाँ प्रकृति और आध्यात्मिकता के सह–यात्री जैसे प्रतीत होते हैं। सदियों से यह एक प्रकार का प्राकृतिक अभयारण्य रहा है जहाँ पाँच सौ से भी अधिक औषधीय वनस्पतियाँ, दुर्लभ पक्षी, पर्वतीय वन्यजीव और स्वच्छ वायु मिलकर एक अद्भुत वातावरण बनाते हैं। प्रकृति का यह संतुलन ही सम्मेद शिखर के आध्यात्मिक अनुभव को और गहरा बनाता है।

वर्तमान समय में सम्मेद शिखर तीर्थ का विस्तार काफी बढ़ चुका है। देश–विदेश से हजारों श्रद्धालु यहाँ आते हैं। वर्ष 2019 में पर्यावरण मंत्रालय ने राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव के बाद पारसनाथ अभयारण्य के आसपास एक पर्यावरण–संवेदनशील क्षेत्र अधिसूचित किया था और पर्यावरण–पर्यटन गतिविधियों को मंजूरी दी थी। झारखंड सरकार ने राज्य की पर्यटन नीति के तहत पारसनाथ को धार्मिक–पर्यटन केंद्र के रूप में विकसित करने के संकेत दिए थे। इस नीति के अनुरूप कुछ घोषणाएँ और योजनाओं पर विचार हुआ, जिससे जैन समुदाय में चिंता और विरोध उभरा कि इससे तीर्थस्थल की पवित्रता और धार्मिक नियमों का उल्लंघन होगा।

विरोध तेज हुआ और कई स्थानों पर जैन समुदाय ने सम्मेद शिखरजी को पर्यटन क्षेत्र घोषित किए जाने के खिलाफ प्रदर्शन तथा भारत के विभिन्न हिस्सों में बंद तथा धरने आयोजित किए। इस अधिसूचना के विरोध में कई जैन मुनियों ने आमरण अनशन भी शुरू कर दिया था। इसमें जैन मुनि सुज्ञेयसागर महाराज ने अपने प्राण त्याग दिए। व्यापक विरोध को देखते हुए जनवरी 2023 में केंद्र सरकार ने तीन वर्ष पहले जारी किए गए अपने आदेश को वापस ले लिया है। जैन समाज और स्थानीय प्रशासन मिलकर इसके पवित्र पर्वतीय स्वरूप को संरक्षित रखने के लिए निरंतर प्रयास कर रहे हैं ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इसे उसी शांति और पवित्रता के साथ अनुभव कर सकें। तप, प्रकृति और आध्यात्मिक अनुभूति का ऐसा अद्भुत संगम अन्यत्र दुर्लभ है। इस पवित्रता, ऐतिहासिक महत्व और प्राकृतिक सौंदर्य ने शिखरजी को तीर्थयात्रियों, साधुओं और अध्यात्म–खोजियों का केंद्र बना दिया है। ये केवल एक तीर्थ ही नहीं अपितु एक आध्यात्मिक विश्वविद्यालय है ।

– नई दिल्ली

स्कूली पाठ्यचर्या में स्थानीय जैव विविधता अन्वेषण का समावेश: नागरिक विज्ञान, अनुभवात्मक अधिगम और संरक्षण चेतना का एक अध्ययन

-निर्मल कुमार न्योलिया

सारांश

⟶ वर्तमान समय में जैव–विविधता ह्रास, जलवायु परिवर्तन तथा प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते मानव दबाव ने पर्यावरण शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यचर्या का अनिवार्य घटक बना दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भी अनुभवात्मक, स्थानीय एवं बहुविषयक अधिगम पर बल देती है। प्रस्तुत लेख उत्तराखण्ड के ऊधम सिंह नगर जनपद स्थित नानकमत्ता पब्लिक स्कूल में संचालित जैव–विविधता आधारित शैक्षिक गतिविधियों के अध्ययन पर आधारित है। विद्यालय द्वारा नागरिक विज्ञान, पक्षी अवलोकन, जैव–विविधता प्रलेखन, आर्द्रभूमि भ्रमण तथा विद्यालय परिसर आधारित प्रकृति अध्ययन को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में सम्मिलित किया गया है। इन गतिविधियों ने विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व, संरक्षण चेतना तथा स्थानीय पारिस्थितिकी के प्रति संवेदनशीलता विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेख इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार स्थानीय जैव–विविधता को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाकर विद्यालय विज्ञान शिक्षा को अधिक प्रासंगिक, संदर्भित और प्रभावी बना सकते हैं।

मुख्य शब्दः जैव विविधता, नागरिक विज्ञान, अनुभवात्मक अधिगम, पर्यावरण शिक्षा, पक्षी अवलोकन, संरक्षण, स्थानीय पारिस्थितिकी

प्रस्तावना

पृथ्वी वर्तमान में छठे सामूहिक विलुप्तीकरण के दौर से गुजर रही है। वैज्ञानिक अध्ययनों के अनुसार प्रजातियों के विलुप्त होने की वर्तमान दर प्राकृतिक पृष्ठभूमि दर की तुलना में कई सौ गुना अधिक है। आवास विनाश, प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैविक आक्रमण तथा संसाधनों के अनियंत्रित दोहन ने विश्वभर में जैव–विविधता को गंभीर संकट में डाल दिया है। ऐसी परिस्थितियों में विद्यालयी शिक्षा की भूमिका केवल पर्यावरणीय अवधारणाओं के सैद्धांतिक अध्यापन तक सीमित नहीं रह सकती। विद्यार्थियों को अपने स्थानीय परिवेश के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कराना तथा उन्हें जैव–विविधता संरक्षण की वास्तविक प्रक्रियाओं से जोड़ना आवश्यक हो गया है। इसी संदर्भ में स्थानीय जैव–विविधता आधारित शिक्षण मॉडल महत्वपूर्ण बनकर उभर रहे हैं। उत्तराखंड के तराई जनपद ऊधम सिंह नगर के छोटे से कस्बे में नानकमत्ता पब्लिक स्कूल बच्चों के बीच प्रकृति और संधारीयता को बढ़ावा देने के लिए समर्पित है। यह स्कूल छात्रों को विभिन्न बाहरी और पर्यावरणीय गतिविधियों में सक्रिय रूप से संलग्न करता है जहां जैव विविधता के संबंध में बच्चों के शैक्षिक अनुभवों को बढ़ाने के उद्देश्य से पक्षियों और अन्य वन्यजीवों को अधिक प्रभावी ढंग से देखने, प्रकृति के साथ गहरा संबंध विकसित करने और जैव विविधता के महत्व को समझने के लिए प्रोत्साहित करने, गतिविधियों में प्रभावी ढंग से भाग लेने के साथ–साथ वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा मूल्यवान डेटा एकत्र करने के लिए बाहरी गतिविधियों में भाग लेने में सक्षम बनाने, इलाके की गंभीर रूप से लुप्तप्राय प्रजाति ''फिन्स बाया'' का अवलोकन और संरक्षण पर काम रहा है। बच्चों को इस तरह की व्यावहारिक गतिविधियों में शामिल करने से पर्यावरण के प्रति जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा मिलता है और स्थानीय जैव विविधता और संरक्षण के मुद्दों के बारे में जागरूकता विकसित होती है।

स्थानीय जैव विविधता और अनुभवात्मक अधिगम

अनुभवात्मक अधिगम का मूल सिद्धांत है कि ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभवों और उनके विश्लेषण से निर्मित होता है। जब विद्यार्थी पक्षियों, तितलियों, पौधों या अन्य जीवों का प्रत्यक्ष अवलोकन करते हैं, तब वे केवल तथ्यों को याद नहीं करते, बल्कि वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझते हैं। नानकमत्ता पब्लिक स्कूल में विद्यार्थियों को स्थानीय जैव विविधता के अध्ययन हेतु नियमित पक्षी भ्रमण, प्रकृति सैर, प्रजाति पहचान और फील्ड अवलोकन गतिविधियों में सम्मिलित किया जाता है। विद्यालय की यह पहल कक्षा शिक्षण को स्थानीय पारिस्थितिकी से जोड़ने का सफल उदाहरण प्रस्तुत करती है। विशेष रूप से क्षेत्र की संकटग्रस्त पक्षी प्रजाति फिन्स बाया (Finn*s Weaver) के अवलोकन और संरक्षण से जुड़े प्रयास विद्यार्थियों को संरक्षण जीव विज्ञान की वास्तविक चुनौतियों से परिचित कराते हैं। परिवेश की जैविक सम्पदा के बीच बिताए गए छोटे–छोटे अनुभव बच्चों में जिज्ञासा, संवेदनशीलता और प्रकृति के प्रति जुड़ाव को गहरा बनाते हैं। विप्रो अर्थियन कार्यक्रम और हिमालयन सस्टेनेबिलिटी चौम्पियनशिप के हिस्से के रूप में, स्कूल द्वारा दो जिलों के 21 स्कूलों के 600 से अधिक छात्रों को तराई के तीन महत्वपूर्ण आर्द्रभूमि–नानकसागर, हरिपुरा और





तुमरिया बांध की निर्देशित पक्षी यात्राओं में प्रतिभागिता सुनिश्चित की। इस दौरान बच्चों ने जब पहली बार विभिन्न प्रजातियों को देखा तो उनका उत्साह देखने लायक था। क्योंकि प्रवासी पक्षियों को उनके प्राकृतिक आवास में देखना एक अवर्णनीय अनुभव था। हर दिन एक नए रोमांच की तरह सुबह की शुरुआत घने कोहरे के साथ हुई, जो तराई के परिदृश्य का संकेत है, जिससे पक्षियों को जल्दी देखना संभव नहीं हो पाता। जैसे–जैसे धुंध धीरे–धीरे उठती गई, आर्द्रभूमि गुलों की सुंदर उड़ान, खिलवाड़ करने वाली बत्तखों की चंचल गतिविधियों और पानी के पार आसानी से उड़ने वाले कूट्स और मूरेन की भव्यता के साथ जीवंत हो उठी। बच्चों के लिए यह अनुभव केवल पक्षी देखने के बारे में नहीं बल्कि प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध बढ़ाने, सराहना करने और संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण हैं।

नागरिक विज्ञान और वैज्ञानिक डेटा संग्रह

हाल के वर्षों में नागरिक विज्ञान वैज्ञानिक खोज बीन का एक महत्वपूर्ण उपकरण बनकर उभरा है। इसमें आम नागरिक वैज्ञानिक डेटा संग्रहण की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। विद्यालय के विद्यार्थी ईको क्लब के अंतर्गत पिछले पाँच वर्षों से वैश्विक नागरिक विज्ञान अभियान 'सिटी नेचर चैलेंज' में भाग ले रहे हैं। इस अभियान के अंतर्गत विद्यार्थियों द्वारा स्थानीय जैव विविधता का दस्तावेजीकरण कर उसे 'आई–नेचुरेलिस्ट' मंच पर अपलोड किया जाता है। ऐसे प्रत्येक अवलोकन को वैज्ञानिक समुदाय द्वारा उपयोग किए जाने वाले डेटा के रूप में मान्यता प्राप्त होती है। यह डेटा प्रजातियों के वितरण, आबादी में परिवर्तन तथा पारिस्थितिकीय परिवर्तनों की निगरानी में उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार विद्यार्थी प्रकृति से केवल सीखते ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक ज्ञान के निर्माण में प्रत्यक्ष योगदान भी देते हैं।

विद्यालय परिसर एक जीवित प्रयोगशाला के रूप में

प्राकृतिक अधिगम के लिए दूरस्थ भ्रमण सदैव संभव नहीं होते। इसलिए विद्यालय परिसर को जैव विविधता अध्ययन की जीवित प्रयोगशाला के रूप में विकसित किया गया। उदाहरणस्वरूप, विद्यालय परिसर में लगे नींबू के पौधों पर तितलियों द्वारा दिए गए अंडों, उनसे निकलने वाली इल्लियों तथा बाद में बनने वाले प्यूपा और वयस्क तितलियों का अवलोकन विद्यार्थियों द्वारा किया गया। इस प्रक्रिया ने उन्हें कीटों के कायांतरण की अवधारणा को प्रत्यक्ष रूप से समझने, भोजन व्यवहार जानने तथा परागण के तौर पर पारिस्थितिकी के महत्व जानने का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार के सूक्ष्म अवलोकन विद्यार्थियों में वैज्ञानिक जिज्ञासा, धैर्य और प्रेक्षण कौशल विकसित करते हैं।

जैव विविधता संकट की समझ का विकास

विद्यालय स्तर पर इको क्लब की गतिविधियों को संचालित करने में नेचर साइंस इनिशिएटिव की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पक्षियों से जुड़े सत्र 2023 में शुरू किए गए जिसके लिए पहले प्रशिक्षण सत्र तत्पश्चात भ्रमण सत्रों का आयोजन किया गया। कक्षा कक्ष में आयोजित संवादात्मक सत्रों के माध्यम से विद्यार्थियों को विलुप्ति संकट, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं तथा मानव गतिविधियों के प्रभावों के बारे में अवगत कराया जाता है। भारत में चीते की पुनर्स्थापना, गिद्धों की आबादी में गिरावट, परागणकर्ताओं की भूमिका तथा सारस एवं साइबेरियाई क्रेन जैसी





प्रजातियों के क्षेत्रीय लोप के उदाहरणों के माध्यम से विद्यार्थियों को यह समझाया जाता है कि जैव विविधता का संरक्षण केवल जीवों की रक्षा नहीं, बल्कि मानव समाज की दीर्घकालिक सुरक्षा से भी जुड़ा हुआ है। विद्यार्थियों द्वारा पूछे गए प्रश्न यह दर्शाते हैं कि वे जैव विविधता संरक्षण को केवल वैज्ञानिक विषय नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक मुद्दे के रूप में भी समझने लगे हैं। स्थानीय जैव विविधता से लेकर उत्तराखंड के अन्य स्थलों की परियोजनाओं पर काम करने से सीखने के अवसर स्वाभाविक रूप से इन बच्चों के लिए खुलते गए और सीखना गहरा होता गया। पिछले ढाई वर्षों में, यह यात्रा एक स्कूल या एक स्थान से आगे बढ़कर राज्य भर में युवा पक्षियों के एक चक्र में विकसित हुई है, जो साझा कहानियों और साझा आश्चर्य से भरी हुई है।

आर्द्रभूमियाँः खुली प्रयोगशालाएँ

आर्द्रभूमियाँ पृथ्वी के सर्वाधिक उत्पादक पारिस्थितिकी तंत्रों में से एक है। विप्रो अर्थियन कार्यक्रम और हिमालयन सस्टेनेबिलिटी चौम्पियनशिप के अंतर्गत विद्यार्थियों को नानकसागर, हरिपुरा तथा तुमड़िया जैसी महत्वपूर्ण जलाशयों के भ्रमण का अवसर प्रदान किया गया। इन भ्रमणों के दौरान विद्यार्थियों ने प्रवासी एवं स्थानीय पक्षियों के व्यवहार, आवास उपयोग तथा पारिस्थितिकीय संबंधों का अध्ययन किया। फील्ड अवलोकनों ने विद्यार्थियों को जैव–विविधता संरक्षण के वास्तविक महत्व से परिचित कराया तथा उन्हें प्रकृति के प्रति भावनात्मक रूप से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पिछले पाँच वर्षों से जैव विविधता के दस्तावेजीकरण की वैश्विक पहल से जुड़े रहते हुए, स्कूल के छात्र सिटी नेचर चौलेंज में सक्रिय भागीदारी कर रहे हैं। इसी अप्रैल में बच्चों द्वारा नानकसागर की समृद्ध जैव विविधता को आई–नेचुरेलिस्ट प्लेटफॉर्म पर डॉक्यूमेंट कर लिया गया है। स्थानीय जैव विविधता की पहचान से जुड़े इस मिशन में वर्ष दुनिया भर के 500 से अधिक शहर इस कार्यक्रम में भाग ले रहे हैं, जिनमें भारत के भी करीब 20 शहर शामिल हैं। इस पहल का उद्देश्य सिटिजन साइंस के माध्यम से वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और पर्यावरणविदों के लिए महत्वपूर्ण डेटा एकत्र करना है। क्योंकि हर एक अवलोकन वास्तविक वैज्ञानिक डेटा बनता है, जिससे जैव विविधता को समझने में मदद मिलती है, नई प्रजातियों की खोज संभव होती है और बदलते प्राकृतिक परिवेश को भी रिकॉर्ड करना संभव होता हा। यह पहल कैलिफोर्निया अकादमी ऑफ साइन्स और नैचुरल हिस्ट्री म्यूजियम ऑफ लॉस एंजिल्स काउंटी द्वारा आयोजित की जाती है, जिसमें दुनियाभर के लोग एक साथ जुड़ते हैं। बच्चों के लिए यह सिर्फ एक प्रतियोगिता नहीं, बल्कि प्रकृति को समझने, उससे जुड़ने और एक वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय का हिस्सा बनने का अवसर था। इस तरह कक्षा के साथ सीखने को एक जीवंत अनुभव में बदल बच्चों के लिए स्कूल परिसर में ही प्रकृति को समझने और देखने का एक सुंदर अवसर बना है। सिटी नेचर चौलेंज अभियान के अंतर्गत बच्चों द्वारा नानक सागर जलाशय के आस पास के निकासी क्षेत्र में लगाते तीन महीने तक अवलोकन किए गए हैं।

संरक्षण शिक्षा और नेतृत्व विकास

जैव विविधता आधारित गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण परिणाम विद्यार्थियों में नेतृत्व क्षमता और संरक्षण के प्रति सक्रिय भागीदारी का विकास है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण विद्यालय की छात्रा जिया खड़ायत हैं, जिनका चयन 21 देशों के 150 से अधिक आवेदकों में से कॉर्नेल लैब ऑफ ऑर्निथोलॉजी, न्यूयॉर्क द्वारा आयोजित यंग बर्डर इवैंट 2025 के लिए किया गया। स्थानीय पक्षी अध्ययन और नागरिक विज्ञान

गतिविधियों में निरंतर भागीदारी ने उन्हें वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई। यह दर्शाता है कि विद्यालय स्तर पर प्रारम्भ की गई छोटी पहलें विद्यार्थियों के लिए अंतरराष्ट्रीय अवसरों के द्वार खोल सकती हैं। स्कूल के इको क्लब द्वारा स्थानीय पक्षी जैवविविधता को देखने समझने से जुड़े जो आंकड़े सजोए गए उनमें पक्षियों के प्रति उनके प्रेम और संरक्षण के प्रति समर्पण, पक्षी निरीक्षण, जैव विविधता प्रलेखन और संरक्षण के लिए उनके अथक जुनून ने एक स्थायी प्रभाव डाला है। क्लब की स्थापना के बाद से, बच्चे पक्षियों के सत्रों में नियमित रूप से भाग लेते हैं, जिससे पक्षियों के जीवन के लिए उनके ज्ञान और प्रशंसा में वृद्धि हुई है। पक्षियों से जुड़े इस अवसर के माध्यम से जिया को शीर्ष पक्षीविदों से मुलाकात करने, मोंटेजुमा राष्ट्रीय वन्यजीव शरण जैसे पक्षी–समृद्ध आवासों को देखने और इथाका, न्यूयॉर्क में विश्व प्रसिद्ध कॉर्नेल लैब ऑफ ऑर्निथोलॉजी में ध्वनि रिकॉर्डिंग, संरक्षण और अनुसंधान में अनुभव प्राप्त करने का मौका मिला।

पाठ्यचर्या नवाचार और सतत विकास लक्ष्य

विद्यालय की गतिविधियाँ संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) विशेषकर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा (SDG-4), जलवायु कार्रवाई (SDG-13), जल के नीचे जीवन (SDG-14) तथा स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र (SDG-15) से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हैं। विप्रो अर्थियन कार्यक्रम के अंतर्गत विद्यालय द्वारा किए गए अपशिष्ट प्रबंधन, सतत मासिक धर्म तथा जैव–विविधता संरक्षण संबंधी अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि विद्यालयी परियोजनाएँ स्थानीय समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। ये पहलें विद्यार्थियों को केवल ज्ञान अर्जित करने तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उन्हें सामाजिक परिवर्तन के सक्रिय भागीदार के रूप में विकसित करती हैं। जैव विविधता और सतत विकास के लक्ष्य से जुड़ी तमाम गतिविधियों को विद्यालय पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाने के उद्देश्य से 2023–24 शैक्षणिक वर्ष में देहरादून स्थित नेचर साइन्स इनीशिएटिव की पहल पर स्कूल ने स्थिरता शिक्षा के लिए भारत का शीर्ष पुरस्कार प्राप्त किया जो राज्य के किसी स्कूल के लिए पहला अवसर था। उत्तराखंड ने दूसरी बार यह अवार्ड जीता है। इससे पहले 2023 में नानकमत्ता के दीपावली मेले के दौरान पैदा होने वाले वेस्ट पर एक व्यापक अध्ययन के लिए पहली बार उत्तराखंड को विप्रो अर्थियन अवार्ड मिला। विप्रो अर्थियन कार्यक्रम स्कूलों और कॉलेजों में पर्यावरणीय सस्टेनेबिलिटी की सोच को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करता है।

निष्कर्ष

नानकमत्ता पब्लिक स्कूल का अनुभव यह स्पष्ट करता है कि स्थानीय जैव विविधता को विद्यालयी पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाना विज्ञान शिक्षा को अधिक संदर्भित, प्रभावी और जीवनोपयोगी बना सकता है। नागरिक विज्ञान, फील्ड अवलोकन, प्रकृति भ्रमण और संरक्षण गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों में वैज्ञानिक साक्षरता, पर्यावरणीय उत्तरदायित्व तथा संरक्षण चेतना का विकास संभव है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में यह मॉडल विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्थानीय ज्ञान, अनुभवात्मक अधिगम और वैश्विक नागरिकता को एकीकृत करता है। यदि देश के विद्यालय स्थानीय जैव–विविधता को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा बनाएं, तो आने वाली पीढ़ियों में प्रकृति संरक्षण के प्रति गहरी समझ और जिम्मेदारी विकसित की जा सकती है।

आभार

यह लेख विद्यालय में जैव विविधता, नागरिक विज्ञान तथा पर्यावरण शिक्षा से जुड़े व्यक्तियों के सहयोग, मार्गदर्शन और अनुभवों पर आधारित है। तथ्य संकलन में सहयोग प्रदान करने के लिए मेंटर सौम्या, समन्वयक मुकेश कांडपाल, विद्यालय के विद्यार्थियों जिया, शीतल, नेहा, साहिल, दिव्यांशु, अंकित, पीयूष तथा प्रिंस का धन्यवाद, जिनके अवलोकनों, अनुभवों और सहभागिता ने इस लेख को समृद्ध बनाया। जैव विविधता गतिविधियों के क्षेत्र में निरंतर मार्गदर्शन एवं प्रेरणा के लिए गरिमा, सुहेल कादिर, रिद्धिमा तथा मिशा बंसल के प्रति विशेष कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। विद्यालय में प्रकृति आधारित शिक्षण और संरक्षण गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु विद्यालय प्रबंधक, प्रधानाचार्य को विशेष धन्यवाद।

संदर्भ–

1. National Education Policy (NEP-2020) Government of India
2. Convention on Biological Diversity (CBD) United Nations
3. Cornell Lab of Ornithology–Citizen Science Programs
4. iNaturalist Research Platform Documentation
5. Wipro Earthian Programme Reports
6. Millennium Ecosystem Assessment Report-
7. IPBES Global Assessment Report on Biodiversity and Ecosystem Services.

–व्याख्याता, जीव विज्ञान
राजीव गांधी नवोदय विद्यालय, खटीमा, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखंड।

शोध आलेख

गढ़वा जिले में रबी फसल आच्छादन एवं शुष्क कृषि का एक भौगोलिक अध्ययन

शिवपूजन प्रजापति, पीएच.डी. शोधार्थी, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची
डॉ. उमेश चंद्र नाथ तिवारी, सेवानिवृत्त असिस्टेंट प्रोफेसर,भूगोल विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची

सारांश

⟶ प्रस्तुत शोध आलेख झारखण्ड राज्य के गढ़वा जिले में रबी फसल आच्छादन एवं शुष्क कृषि की स्थिति का भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन वर्ष 2025–26 के कृषि आँकड़ों पर आधारित है, जिनका स्रोत जिला कृषि कार्यालय, गढ़वा है। अध्ययन में भूमि उपयोग, प्रमुख रबी फसलों के वितरण, प्रखंडवार फसल आच्छादन तथा शुष्क कृषि की समस्याओं का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जिले की कृषि व्यवस्था मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर आधारित है तथा सिंचाई सुविधाओं की सीमित उपलब्धता कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है। जिले में सरसों, गेहूं एवं चना प्रमुख रबी फसलें हैं। प्रखंडवार विश्लेषण में गढ़वा, मेराल एवं नगर ऊंटारी जैसे प्रखंडों में उच्च कृषि आच्छादन पाया गया, जबकि बड़गड़, डंडा एवं सगमा जैसे क्षेत्रों में निम्न आच्छादन दर्ज किया गया।

शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि जल संरक्षण, सूक्ष्म सिंचाई, आधुनिक कृषि तकनीकों एवं सरकारी योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से जिले में कृषि उत्पादकता एवं रबी फसल आच्छादन में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि कृषि विकास में क्षेत्रीय विषमताएँ सिंचाई सुविधाओं एवं जल संसाधनों की उपलब्धता से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती हैं।

मूल शब्दः रबी फसल, शुष्क कृषि, कृषि भूगोल, भूमि उपयोग, फसल आच्छादन, गढ़वा जिला

1. परिचय (Introduction)

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ कृषि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत संरचना का महत्वपूर्ण अंग है। देश की अधिकांश ग्रामीण आबादी कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। भारतीय कृषि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका अधिकांश भाग मानसूनी वर्षा पर आधारित है। वर्षा की अनिश्चितता एवं असमान वितरण कृषि उत्पादन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। भारत के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में कृषि विकास की गति जल संसाधनों एवं सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता पर निर्भर करती है (शर्मा, 2019)।

झारखण्ड राज्य का गढ़वा जिला भी कृषि प्रधान क्षेत्र है। जिले की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। जिले की कृषि व्यवस्था मुख्यतः वर्षा आधारित है तथा सिंचाई सुविधाओं का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। शुष्क कृषि उन क्षेत्रों में की जाने वाली कृषि प्रणाली है जहाँ फसल उत्पादन मुख्यतः वर्षा पर आधारित होता है तथा जल की कमी कृषि विकास की प्रमुख बाधा बन जाती है (मिश्रा, 2017)।

गढ़वा जिले में रबी फसलें कृषि अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार हैं। गेहूं, चना, मसूर, सरसों एवं तिसी जैसी फसलें यहाँ व्यापक रूप से उगाई जाती हैं। रबी फसल आच्छादन किसी क्षेत्र की कृषि सक्रियता, भूमि उपयोग एवं सिंचाई क्षमता का महत्वपूर्ण संकेतक माना जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में गढ़वा जिले में रबी फसल आच्छादन एवं शुष्क कृषि की स्थिति का विस्तृत भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

2.अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक परिचय (Study Area)

गढ़वा जिला झारखण्ड राज्य के उत्तर–पश्चिमी भाग में स्थित है। इसका गठन 1 अप्रैल 1991 को पलामू जिले से पृथक कर किया गया था। जिले का कुल क्षेत्रफल लगभग 409300 हेक्टेयर है। जिले की स्थलाकृति मिश्रित प्रकार की है जिसमें पठारी, वनाच्छादित एवं मैदानी क्षेत्र पाए जाते हैं। यहाँ की जलवायु उष्णकटिबंधीय मानसूनी है। वर्षा मुख्यतः दक्षिण–पश्चिम मानसून से प्राप्त होती है, किन्तु वर्षा का असमान वितरण कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है। झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार राज्य के अधिकांश जिलों में कृषि विकास वर्षा की अनिश्चितता एवं सीमित सिंचाई सुविधाओं से प्रभावित होता है (झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण, 2024)। गढ़वा जिले की कृषि स्थिति भी इसी प्रवृत्ति को दर्शाती है।

3. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the study)

1. गढ़वा जिले में भूमि उपयोग की स्थिति का अध्ययन करना।
2. प्रमुख रबी फसलों के आच्छादन का विश्लेषण करना।
3. प्रखंडवार रबी फसल आच्छादन की क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन करना।
4. शुष्क कृषि की समस्याओं एवं प्रभावों का विश्लेषण करना।

5.कृषि विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

4. शोध प्रविधि (Methodology)

प्रस्तुत शोध अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन में प्रयुक्त रबी फसल आच्छादन, भूमि उपयोग तथा प्रखंडवार कृषि संबंधी आँकड़े जिला कृषि कार्यालय, गढ़वा से प्राप्त किए गए हैं। इसके अतिरिक्त अध्ययन को अधिक प्रमाणिक एवं विश्लेषणात्मक बनाने हेतु झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की प्रकाशित रिपोर्टों तथा कृषि भूगोल एवं शुष्क कृषि से संबंधित पुस्तकों एवं शोध आलेखों का भी उपयोग किया गया है। अध्ययन का आधार वर्ष 2025–26 रखा गया है। गढ़वा जिले के सभी प्रखंडों को अध्ययन इकाई के रूप में चयनित किया गया है, जिससे जिले में रबी फसल आच्छादन की क्षेत्रीय विषमताओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया जा सके।

शोध में वर्णनात्मक (Descriptive), तुलनात्मक (Comparative) तथा विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धतियों का उपयोग किया गया है। भूमि उपयोग एवं रबी फसल आच्छादन के आँकड़ों का प्रतिशत विश्लेषण कर कृषि संरचना की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। प्रखंडवार रबी फसल आच्छादन को निम्न, मध्यम एवं उच्च श्रेणियों में वर्गीकृत कर क्षेत्रीय वितरण का अध्ययन किया गया है। यह वर्गीकरण फसल आच्छादन के परिमाणात्मक आधार पर किया गया है। अध्ययन में तालिका एवं मानचित्र का भी उपयोग किया गया है। प्रखंडवार रबी फसल आच्छादन को प्रदर्शित करने हेतु थीमैटिक मानचित्र का निर्माण किया गया है, जिससे कृषि वितरण की क्षेत्रीय प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप से समझा जा सके। कृषि भूगोल में मानचित्रीय प्रस्तुतीकरण क्षेत्रीय विषमताओं के अध्ययन का प्रभावी माध्यम माना जाता है (सिंह, 2018)।

आँकड़ों के विश्लेषण में प्रतिशत विधि, तुलनात्मक व्याख्या तथा क्षेत्रीय विश्लेषण तकनीक का उपयोग किया गया है। इसके माध्यम से रबी फसल आच्छादन, भूमि उपयोग प्रतिरूप तथा शुष्क कृषि की समस्याओं के मध्य संबंधों को समझने का प्रयास किया गया है। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य गढ़वा जिले में रबी फसल आच्छादन की वर्तमान स्थिति, क्षेत्रीय विषमताओं एवं शुष्क कृषि की समस्याओं का भौगोलिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है, ताकि कृषि विकास की संभावनाओं एवं चुनौतियों को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

5.गढ़वा जिले में भूमि उपयोग की स्थिति

किसी भी क्षेत्र के कृषि विकास को समझने के लिए भूमि उपयोग का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। भूमि उपयोग प्रतिरूप से यह ज्ञात होता है कि उपलब्ध भूमि का कितना भाग कृषि, वन, बस्ती अथवा अन्य कार्यों में उपयोग किया जा रहा है। कृषि प्रधान क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि एवं वास्तविक बोये गए क्षेत्र का अनुपात कृषि विकास की स्थिति को स्पष्ट करता है। भूमि उपयोग प्रतिरूप किसी क्षेत्र की कृषि क्षमता, संसाधन उपयोग एवं आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण संकेतक होता है (सिंह, 2018)।

गढ़वा जिले की भूमि उपयोग स्थिति का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जिले में कृषि विकास की पर्याप्त संभावनाएँ मौजूद हैं, किन्तु उपलब्ध कृषि योग्य भूमि का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है। जिले का कुल क्षेत्रफल 409300 हेक्टेयर है, जिसमें से 184677 हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य है। यह कुल क्षेत्रफल का लगभग 45.12 प्रतिशत भाग है। इससे स्पष्ट होता है कि जिले की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है।

तालिका 1 : भूमि उपयोग का विवरण

गढ़वा जिले में भूमि का विवरण		
भूमि	क्षेत्रफल हेक्टेयर में	प्रतिशत में
कुल क्षेत्रफल	409300	100
कृषि योग्य	184677	45.12
बोया गया क्षेत्र	148112	36.19
रबी फसल	82337	20.12

स्रोतः जिला कृषि कार्यालय, गढ़वा, 2025–26

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जिले में वास्तविक बोया गया क्षेत्र 148112 हेक्टेयर है, जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 36.19 प्रतिशत है। कृषि योग्य भूमि एवं वास्तविक बोये गए क्षेत्र के मध्य उल्लेखनीय अंतर यह संकेत देता है कि जिले में उपलब्ध कृषि संसाधनों का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है। इसका प्रमुख कारण सिंचाई सुविधाओं की कमी, वर्षा आधारित कृषि प्रणाली, तकनीकी पिछड़ापन एवं सीमित कृषि निवेश है।

भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि का पूर्ण उपयोग सिंचाई सुविधाओं, उन्नत कृषि तकनीकों एवं सरकारी सहायता पर निर्भर करता है (शर्मा, 2019)। गढ़वा जिले में भी यही स्थिति देखने को मिलती है। जिले के कई क्षेत्रों में किसान अब भी पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर निर्भर हैं, जिसके कारण कृषि उत्पादकता अपेक्षाकृत कम बनी रहती है।

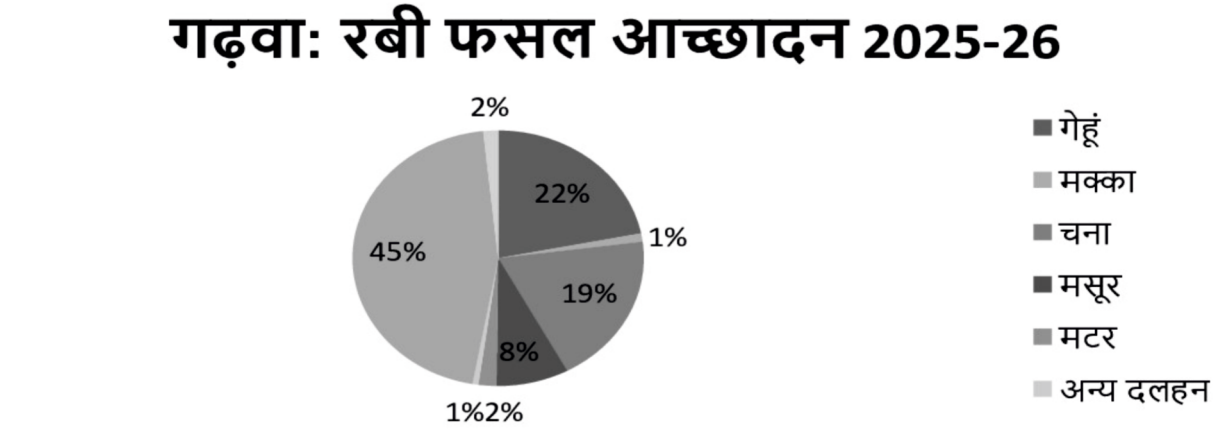
तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि जिले में रबी

फसल क्षेत्र 82337 हेक्टेयर है, जो कुल क्षेत्रफल का लगभग 20.12 प्रतिशत है। यह स्थिति दर्शाती है कि जिले की कृषि अभी भी वर्षा एवं सीमित सिंचाई संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर है। रबी फसलों की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता अधिक होती है, किन्तु जिले में सिंचाई सुविधाओं का असमान विकास रबी कृषि विस्तार में बाधा उत्पन्न करता है। शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाओं की कमी कृषि उत्पादन की सबसे बड़ी समस्या होती है (मिश्रा, 2017)। गढ़वा जिले के कई प्रखंडों में यही स्थिति देखने को मिलती है, जहाँ किसान मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर निर्भर रहते हैं।

भूमि उपयोग की वर्तमान स्थिति यह स्पष्ट करती है कि यदि जिले में जल संरक्षण योजनाओं, तालाब निर्माण, चेक डैम, नलकूप एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का विस्तार किया जाए तो कृषि योग्य भूमि का अधिक प्रभावी उपयोग संभव हो सकता है। इससे न केवल रबी फसल क्षेत्र में वृद्धि होगी, बल्कि कृषि उत्पादन एवं किसानों की आय में भी सकारात्मक परिवर्तन आएगा।

6. प्रमुख रबी फसलों का आच्छादन एवं कृषि प्रतिरूप

गढ़वा जिले की कृषि संरचना का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि जिले में रबी फसलों का वितरण जल उपलब्धता, मिट्टी की प्रकृति, बाजार मांग तथा पारंपरिक कृषि पद्धतियों से प्रभावित है। तालिका 2 के अनुसार जिले में सरसों का आच्छादन सर्वाधिक 37480 हेक्टेयर है। यह कुल रबी फसल क्षेत्र का बड़ा भाग है। तिलहन फसलें विशेष रूप से उन क्षेत्रों में अधिक विकसित होती हैं जहाँ सिंचाई सुविधाएँ सीमित होती हैं तथा वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है (भारत सरकार, 2025)।



गढ़वा जिले में सरसों की व्यापक खेती यह दर्शाती है कि यहाँ की कृषि प्रणाली शुष्क कृषि की परिस्थितियों से प्रभावित है। सरसों कम जल में भी अच्छी उपज देने वाली फसल है तथा इसकी बाजार मांग भी स्थिर रहती है। यही कारण है कि किसान इसे आर्थिक दृष्टि से सुरक्षित फसल मानते हैं।

गेहूं जिले की दूसरी प्रमुख रबी फसल है जिसका आच्छादन 18018 हेक्टेयर है। गेहूं मुख्य खाद्यान्न फसल होने के कारण किसानों की प्राथमिकता में शामिल है। किन्तु गेहूं की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक होती है। जिन क्षेत्रों में नलकूप, कुएँ अथवा अन्य सिंचाई साधन उपलब्ध हैं, वहाँ गेहूं का उत्पादन अधिक पाया जाता है। भारतीय कृषि क्षेत्रों में सिंचित भागों में गेहूं उत्पादन का विकास अधिक तेजी से हुआ है (शर्मा, 2019)।

चना का आच्छादन 15805 हेक्टेयर है, जो जिले में दलहन फसलों के महत्व को दर्शाता है। दलहन फसलें मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होती हैं क्योंकि वे वायुमंडलीय नाइट्रोजन को भूमि में स्थिर करती हैं। झारखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में चना एवं अन्य दलहन फसलें कम लागत एवं कम जोखिम वाली कृषि प्रणाली का महत्वपूर्ण भाग हैं (यादव, 2020)। मसूर का क्षेत्र 6616 हेक्टेयर है। मसूर भी कम जल वाली दलहन फसल है तथा शुष्क कृषि क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाई जाती है। इसके अतिरिक्त मटर एवं तिसी जैसी फसलें भी जिले में सीमित क्षेत्र में उगाई जाती हैं।

मक्का एवं अन्य दलहन का क्षेत्र अपेक्षाकृत कम पाया गया है। इसका कारण सीमित सिंचाई सुविधा, तकनीकी पिछड़ापन एवं बाजार संरचना हो सकता है। शुष्क कृषि क्षेत्रों में किसान सामान्यतः ऐसी फसलों को प्राथमिकता देते हैं जिनमें कम निवेश की आवश्यकता हो तथा उत्पादन जोखिम कम हो (मिश्रा, 2017)। गढ़वा जिले की फसल संरचना स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि यहाँ कृषि प्रणाली प्राकृतिक परिस्थितियों एवं जल संसाधनों से गहराई से प्रभावित है।

7. प्रखंडवार रबी फसल आच्छादन का क्षेत्रीय विश्लेषण

प्रस्तुत मानचित्र एवं तालिका 2 के आधार पर गढ़वा

जिले में रबी फसल आच्छादन का वितरण स्पष्ट रूप से क्षेत्रीय विषमताओं को प्रदर्शित करता है। जिले के विभिन्न प्रखंडों में रबी फसल आच्छादन की मात्रा समान नहीं है, बल्कि यह भौगोलिक स्थिति, सिंचाई सुविधाओं, भूमि की उर्वरता, कृषि अवसंरचना तथा जल संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार भिन्न–भिन्न पाई जाती है। किसी क्षेत्र में कृषि अवसंरचना एवं सिंचाई संसाधनों का विकास कृषि उत्पादकता एवं फसल आच्छादन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है (सिंह, 2018)। मानचित्र में रबी फसल आच्छादन को निम्न, मध्यम एवं उच्च श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। मानचित्र एवं तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि जिले के मध्य एवं उत्तरी भागों में रबी फसल आच्छादन अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि पश्चिमी एवं दक्षिणी भागों में निम्न आच्छादन पाया जाता है।

तालिका2: गढ़वा जिले में प्रखंडवार रबी फसल आच्छादन (2025–26)

तालिका 2 : गढ़वा जिले में प्रखंडवार रबी फसल आच्दादन(2025–26)

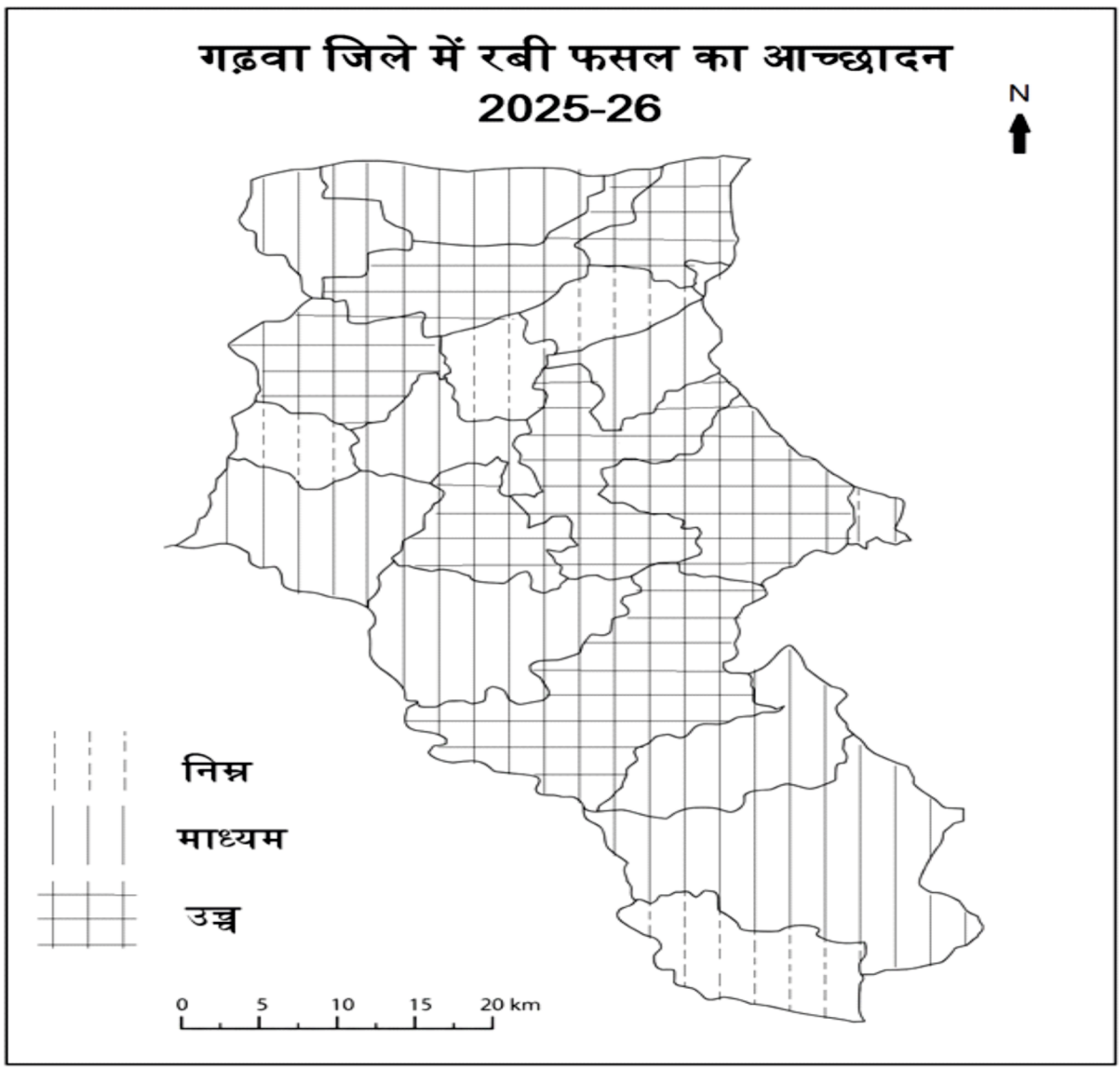
क्रम	प्रखंड	कुल आच्छादन (हेक्टेयर में)	वर्गीकरण	क्रम	प्रखंड	कुल आच्छादन (हेक्टेयर में)	वर्गीकरण
1	बड़गड़	1934	निम्न	11	चिनियां	4155	मध्यम
2	डंडा	2742	निम्न	12	मझिआंव	4276	मध्यम
3	सगमा	2923	निम्न	13	रमना	4468	मध्यम
4	बरडीहा	2968	निम्न	14	भवनाथपुर	4665	उच्च
5	विशुनपुरा	3165	निम्न	15	डंडई	4805	उच्च
6	धुरकी	3342	मध्यम	16	रंका	4967	उच्च
7	रमकंडा	3942	मध्यम	17	कांडी	5093	उच्च
8	क्तार	3995	मध्यम	18	नगर ऊंटारी	5344	उच्च
9	खरौंधी	4006	मध्यम	19	मेराल	5662	उच्च
10	भंडरिया	4029	मध्यम	20	गढ़वा	5856	उच्च

स्रोतः जिला कृषि कार्यालय, गढ़वा, 2025–26

मानचित्र एवं तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गढ़वा प्रखंड में सर्वाधिक 5856 हेक्टेयर रबी फसल आच्छादन दर्ज किया गया है। इसके अतिरिक्त मेराल (5662 हेक्टेयर) एवं नगर ऊंटारी (5344 हेक्टेयर) भी उच्च आच्छादन श्रेणी में आते हैं। इन क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाएँ, सड़क संपर्क, बाजार व्यवस्था एवं कृषि निवेश अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं। प्रशासनिक एवं व्यापारिक केंद्र होने के कारण गढ़वा प्रखंड में कृषि तकनीकों एवं सरकारी योजनाओं की पहुँच अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। जिन क्षेत्रों में बाजार एवं परिवहन सुविधाएँ विकसित होती हैं वहाँ कृषि उत्पादन एवं फसल तीव्रता दोनों में वृद्धि होती है (शर्मा, 2019)। उच्च आच्छादन श्रेणी में भवनाथपुर, डंडई, रंका एवं कांडी जैसे प्रखंड भी शामिल हैं। मानचित्र में इन क्षेत्रों को उच्च श्रेणी के प्रतीकों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इन क्षेत्रों में गेहूं, चना एवं सरसों जैसी रबी फसलों का विस्तार अधिक पाया जाता है। कृषि योग्य भूमि का प्रभावी उपयोग तथा सिंचाई संसाधनों की उपलब्धता इन क्षेत्रों में कृषि विकास को प्रोत्साहित करती है।

मध्यम आच्छादन श्रेणी में धुरकी, रमकंडा, केतार, खरौंधी, भंडरिया, चिनियां, मझिआंव एवं रमना जैसे प्रखंड आते हैं। मानचित्र में इन क्षेत्रों को मध्यम श्रेणी के प्रतीकों से प्रदर्शित किया गया है। इन प्रखंडों में कृषि गतिविधियाँ संतोषजनक हैं, किन्तु सिंचाई सुविधाओं एवं आधुनिक कृषि तकनीकों का विकास अपेक्षाकृत सीमित है। किसान आंशिक रूप से वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर रहते हैं, जिसके कारण कृषि उत्पादन में स्थिरता का अभाव देखा जाता है। शुष्क कृषि क्षेत्रों में जल प्रबंधन एवं मृदा संरक्षण के अभाव में कृषि उत्पादकता सीमित हो जाती है (मिश्रा, 2017)।

निम्न आच्छादन श्रेणी में बड़गड़, डंडा, सगमा, बरडीहा एवं विशुनपुरा जैसे प्रखंड सम्मिलित हैं। मानचित्र में इन क्षेत्रों को निम्न श्रेणी के पृथक प्रतीकों द्वारा दर्शाया गया है। बड़गड़ प्रखंड में केवल 1934 हेक्टेयर रबी फसल आच्छादन दर्ज किया गया है, जो जिले में सबसे कम है। इन क्षेत्रों में दुर्गम भौगोलिक स्थिति, सीमित जल संसाधन, सिंचाई सुविधाओं का अभाव तथा



स्रोतः जिला कृषि कार्यालय, गढ़वा, 2025–26 के आंकडों पर आधारित एवं लेखक द्वारा निर्मित

तकनीकी पिछड़ापन कृषि विकास को प्रभावित करते हैं। झारखण्ड के कई ग्रामीण एवं सीमावर्ती क्षेत्रों में अवसंरचनात्मक पिछड़ापन कृषि विकास की प्रमुख बाधा है (यादव, 2020)। मानचित्र से यह भी स्पष्ट होता है कि जिले के पश्चिमी एवं दक्षिणी भागों में निम्न कृषि आच्छादन अधिक पाया जाता है, जबकि मध्य एवं उत्तरी भागों में कृषि विस्तार अपेक्षाकृत अधिक विकसित है। यह स्थिति जल संसाधनों एवं कृषि अवसंरचना की क्षेत्रीय असमानता को दर्शाती है।

इस प्रकार मानचित्र एवं तालिका 2 के संयुक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गढ़वा जिले में रबी फसल आच्छादन का वितरण असमान है तथा कृषि विकास पर भौगोलिक एवं अवसंरचनात्मक कारकों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि निम्न एवं मध्यम श्रेणी के प्रखंडों में सिंचाई सुविधाओं, जल संरक्षण योजनाओं एवं आधुनिक कृषि तकनीकों का विस्तार किया जाए, तो कृषि आच्छादन एवं उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है।

8. शुष्क कृषि एवं गढ़वा जिला

गढ़वा जिले की कृषि व्यवस्था मुख्यतः मानसून आधारित है। वर्षा की अनिश्चितता एवं सिंचाई संसाधनों की कमी के कारण यहाँ शुष्क कृषि की परिस्थितियाँ विकसित हुई हैं। शुष्क कृषि उन क्षेत्रों में की जाती है जहाँ वर्षा सीमित अथवा असमान होती है तथा किसान सिंचाई के बजाय वर्षा के जल पर निर्भर रहते हैं। शुष्क कृषि क्षेत्रों में जल संरक्षण एवं मृदा संरक्षण कृषि विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं (मिश्रा, 2017)।

गढ़वा जिले में वर्षा का वितरण असमान है। कई बार अल्प वर्षा अथवा समय पर वर्षा न होने के कारण फसल उत्पादन प्रभावित होता है। जिले के अधिकांश किसान लघु एवं सीमांत श्रेणी के हैं, जिनकी आर्थिक क्षमता सीमित है। परिणामस्वरूप वे आधुनिक सिंचाई तकनीकों एवं उन्नत कृषि उपकरणों का पर्याप्त उपयोग नहीं कर पाते।

जिले में सरसों, चना, मसूर एवं तिसी जैसी कम जल वाली फसलें अधिक प्रचलित हैं। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कृषि प्रणाली शुष्क कृषि की परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई है। शुष्क क्षेत्रों में दलहन एवं तिलहन फसलें कृषि स्थिरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (भारत सरकार, 2025)। बड़गड़, सगमा, विशुनपुरा एवं डंडा जैसे क्षेत्रों में निम्न कृषि आच्छादन यह संकेत देता है कि इन क्षेत्रों में जल संकट एवं सिंचाई सुविधाओं का अभाव अधिक गंभीर है। यहाँ किसान मुख्यतः वर्षा पर निर्भर रहते हैं। वर्षा में अनियमितता सीधे कृषि उत्पादन को प्रभावित करती है।

शुष्क कृषि की समस्याओं को कम करने के लिए जल संरक्षण योजनाओं का विकास आवश्यक है। तालाब निर्माण, चेक डैम, वर्षा जल संचयन एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों के माध्यम से कृषि उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी तकनीकें कम जल में अधिक उत्पादन सुनिश्चित करने में सहायक होती हैं (मिश्रा, 2017)। यदि गढ़वा जिले में जल संसाधनों का समुचित विकास किया जाए तो कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन संभव है।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गढ़वा जिले की कृषि मुख्यतः मानसूनी वर्षा पर आधारित है तथा जिले में शुष्क कृषि की परिस्थितियाँ व्यापक रूप से विद्यमान हैं। जिले में पर्याप्त कृषि योग्य भूमि उपलब्ध होने के बावजूद सिंचाई सुविधाओं की कमी, वर्षा की अनिश्चितता एवं पारंपरिक कृषि पद्धतियों के कारण कृषि क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा है।

रबी फसल आच्छादन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सरसों, गेहूं एवं चना जिले की प्रमुख फसलें हैं। विशेष रूप से सरसों का सर्वाधिक क्षेत्र यह दर्शाता है कि जिले की कृषि संरचना कम जल वाली फसलों के अनुकूल विकसित हुई है।

प्रखंडवार विश्लेषण से कृषि विकास की क्षेत्रीय विषमताएँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। गढ़वा, मेराल एवं नगर ऊंटारी जैसे प्रखंडों में उच्च रबी फसल आच्छादन पाया गया, जबकि बड़गड़, डंडा एवं सगमा जैसे क्षेत्रों में निम्न आच्छादन दर्ज किया गया। यह स्थिति सिंचाई सुविधाओं, कृषि अवसंरचना एवं जल संसाधनों की असमान उपलब्धता को दर्शाती है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि जल संरक्षण, सूक्ष्म सिंचाई, आधुनिक कृषि तकनीकों एवं सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए, तो जिले में कृषि उत्पादन एवं रबी फसल आच्छादन दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। यह अध्ययन क्षेत्रीय कृषि योजना एवं ग्रामीण विकास के लिए उपयोगी आधार प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

1.सिंह, आर. एन. (2018). कृषि भूगोल. प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

2.शर्मा, पी. सी. (2019). भारत का कृषि भूगोल. रावत पब्लिकेशन, जयपुर।

3.मिश्रा, एच. एन. (2017). शुष्क कृषि एवं जल प्रबंधन. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

4.यादव, बी. पी. (2020). "झारखण्ड में कृषि विकास की क्षेत्रीय विषमताएँ", भारतीय भूगोल समीक्षा, अंक–12।

5.झारखण्ड सरकार, योजना एवं विकास विभाग (2024). झारखण्ड आर्थिक सर्वेक्षण 2023–24, रांची। Jharkhand Economic Survey 2023.24

6.भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय (2025). Agricultural Statistics at a Glance 2025, नई दिल्ली।



शोध आलेख

अज्ञेय के कथा-साहित्य की स्त्रियाँ : मन, मौन और विद्रोह

-डॉ.प्रतीक्षा दूबे

⟶ हिंदी कथा–साहित्य में अज्ञेय का प्रवेश केवल एक कथाकार के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य के अंतर्जगत के सूक्ष्म अन्वेषक के रूप में हुआ। उनकी रचनाओं में बाह्य यथार्थ से अधिक मनुष्य के अंतर्जगत की हलचलों, अस्तित्वगत बेचैनियों और आत्मसंघर्षों की उपस्थिति दिखाई देती है। इसी कारण इनके कथा–पात्र, विशेषकर स्त्रियाँ केवल पात्र नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय स्त्री–चेतना की सूक्ष्म और जटिल अभिव्यक्तियाँ हैं। इनके अंदर अथाह संवेदनाएँ, मौन की गहरी पीड़ा और विद्रोह की धीमा, किंतु तीव्र ताप एक साथ मिलता है। अज्ञेय ने अपने स्त्री पात्रों के बाह्य संघर्षों के वर्णन की अपेक्षा उनके अंतर्जगत की व्याख्या में अधिक रुचि दिखाई है।

उनके यहाँ स्त्री का 'मन' प्रेम, अकेलेपन, असुरक्षा और आत्मसम्मान के द्वंद्व से भरा हुआ है। उसका 'मौन' केवल सहनशीलता नहीं, बल्कि अनकहे प्रतिरोध की भाषा है और उसका 'विद्रोह' घोषणात्मक न होकर आत्मनिर्णय तथा अपनी अस्मिता की रक्षा में निहित है। 'शेखर : एक जीवनी' की शशि, 'नदी के द्वीप' की रेखा और गौरा, अपने–अपने अजनबी की योके और सेल्मा, रोज कहानी की मालती, की स्त्रियाँ अपने टूटते–बिखरते संबंधों, संवेदनात्मक रिक्तताओं और आत्मसंघर्षों के बीच भी भीतर कहीं अपनी अस्मिता को बचाए रखने का प्रयत्न करती हैं, इसीलिए अज्ञेय अपने कथा–साहित्य में स्त्रियों को केवल करुणा या त्याग की प्रतिमा के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे संवेदनशील व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसके मौन में भी एक गहरा मानवीय प्रतिरोध ध्वनित होता रहता है। अज्ञेय के कथा–साहित्य की स्त्रियों को समझना वस्तुतः आधुनिक भारतीय स्त्री–चेतना के मनोवैज्ञानिक स्वरूप को समझने के समान है। इस संदर्भ में अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' की स्त्री पात्र शशि का चरित्र स्त्री–अंतर्मन की उस जटिलतम संरचना को उद्घाटित करता है, जहाँ प्रेम, त्याग, आत्मगोपन और मौन एक–दूसरे में घुल–मिल जाते हैं। अज्ञेय शशि के चरित्र के इस विशेषता को उपन्यास के नायक शेखर द्वारा उद्घाटित करवाते हुए लिखते हैं–''शशि इतनी घिरी होकर भी इन सबसे कितनी दूर है, कितनी तटस्थ!''

शशि केवल शेखर की प्रेमिका नहीं है, वह उसके व्यक्तित्व के भीतर दबे हुए संवेदनात्मक मनुष्य को जागृत करने वाली उपस्थिति है। शेखर का व्यक्तित्व जहाँ वैचारिक कठोरता, अहं और आत्मसंघर्ष से निर्मित होता है, वहीं शशि उसके लिए करुणा और आत्मीयता का वह सूक्ष्म स्पर्श बनकर आती है, जो उसके कठोर वैचारिक आवरण को धीरे–धीरे भंग करता है। शेखर के नायकत्व में शशि का मौन आत्मसमर्पण स्पष्ट रूप से गुंजित होता है– ''संपूर्णता की ओर पुरुष की प्रगति में स्त्री माध्यम है– और वही एक माध्यम है। धरती धरती ही है पर वह भी समान सृष्टा है, क्या हुआ अगर उसके लिए सृजन पुलक और उन्माद नहीं, क्लेश और वेदना है?''1. शेखर के प्रति शशि का प्रेम अधिकार या बंधन के रूप में ध्वनित नहीं होता है, बल्कि वह शेखर की सृष्टा के रूप में दिखाई देती है–''मैं अपने को मिटा नहीं रही–जिस शेखर को मैं देखती हूं, उसके बनाने में मेरा बराबर का साझा होगा, इसलिए देने–लेने का कोई सवाल नहीं है.....''1. शशि का मौन दरअसल उस सामाजिक संरचना के विरुद्ध एक सूक्ष्म प्रतिरोध है, जहाँ स्त्री की इच्छाओं, आकांक्षाओं और प्रेम को स्वतंत्र अभिव्यक्ति का अधिकार नहीं मिलता। शशि प्रेम में समर्पित होकर भी स्वयं को पूरी तरह विसर्जित नहीं करती, उसके भीतर एक ऐसी आत्मचेतना विद्यमान रहती है, जो उसे केवल 'प्रेमिका' बनकर रह जाने से रोकती है। इसी संदर्भ में उसका यह कथन अत्यंत अर्थपूर्ण हो उठता है–"मैं तुम्हें बाँधना नहीं चाहती, शेखर क्योंकि बंधन में प्रेम नहीं रहता।" यह संवाद केवल प्रेम की उदात्तता का उद्घोष नहीं, बल्कि स्त्री के उस सूक्ष्म आत्मबोध का संकेत भी है, जहाँ वह संबंध में केवल अधिकार नहीं, स्वतंत्रता और समानता देखना चाहती है। इस प्रकार शशि का चरित्र अज्ञेय के कथा–साहित्य में स्त्री के 'मन, मौन और विद्रोह' की त्रयी को अत्यंत मार्मिक और विचारात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है। अज्ञेय की स्त्रियों में 'मौन' केवल एक भावात्मक स्थिति नहीं, बल्कि उनके अस्तित्व की गहरी मनोवैज्ञानिक संरचना है। यह मौन दमन से उपजी निष्क्रियता नहीं, बल्कि आत्मरक्षा, आत्मसंयम और आत्मगोपन की वह जटिल प्रक्रिया है, जिसके भीतर स्त्री अपने टूटते हुए अंतर्जगत को बचाए रखने

का प्रयास करती है। 'नदी के द्वीप' की रेखा इस संदर्भ में अज्ञेय की सबसे महत्वपूर्ण स्त्री पात्रों में एक है। रेखा का मौन कई बार उसके संवादों से अधिक अर्थपूर्ण हो उठता है, क्योंकि वह अपनी पीड़ा या असहमति को मुखर रूप से अभिव्यक्त नहीं करती, उसका विद्रोह घोषणात्मक नहीं है, बल्कि गहरी मानवीय संवेदना और स्त्री अस्मिता के मनोविज्ञान को प्रदर्शित करता है – ''हां, मगर सचमुच सेतु बन सकें तो दोनों ओर से रौंदे जाने में भी सुख है, और रौंदे जाकर टूट कर प्रवाह में गिर पड़ने में भी सिद्धि। पर मैं तो कह रही हूं कि मैं तो उतनी कल्पना भी नहीं कर पाती–मैं तो समझता हूं, हम अधिक से अधिक इस प्रवाह में छोटे–छोटे द्वीप हैं, उस प्रवाह से घिरे हुए भी, उससे कटे हुए भी भूमि से बंधे और स्थिर भी पर प्रवाह में सर्वदा असहाय भी–'' 2. रेखा आधुनिक है, किंतु उसका आधुनिक होना केवल सामाजिक व्यवहार या शिक्षित चेतना तक सीमित नहीं है, वह भावनात्मक और वैचारिक स्तर पर भी अपनी स्वतंत्र सत्ता के प्रति सजग स्त्री है। उसके भीतर प्रेम की आकांक्षा है, पर वह प्रेम को आत्मविलोपन में परिणत नहीं होने देती–"मैं किसी की छाया बनकर नहीं जी सकतीय क्योंकि तब मैं स्वयं अपने लिए भी नहीं बचूँगी।" यह संवाद रेखा के व्यक्तित्व की मूल संवेदना को उद्घाटित करता है। यहाँ स्त्री का आग्रह केवल प्रेम पाने का नहीं, बल्कि संबंधों के भीतर अपनी स्वतंत्र अस्मिता को सुरक्षित रखने का है। रेखा प्रेम को आत्मविसर्जन नहीं बनने देती वह संबंधों में रहते हुए भी अपने 'स्व' को बचाए रखना चाहती है। भुवन के साथ उसके संबंधों में आकर्षण, आत्मीयता और बौद्धिक निकटता सब कुछ मौजूद है, किंतु वह स्वयं को किसी पुरुष–केंद्रित परिधि में सीमित कर देने से इनकार करती है। यही कारण है कि रेखा का संघर्ष बाहरी सामाजिक रूढ़ियों से अधिक अपने भीतर के उस रिक्त और अकेले मनुष्य से है, जो स्वतंत्रता चाहता भी है और भावनात्मक आश्रय की तलाश भी करता है। अज्ञेय की विशेषता यही है कि वे स्त्री–विमर्श को सामान्य रूप से व्यक्त करने के बजाय मनोविश्लेषणात्मक गहराइयों में रूपायित करते हैं। उनके स्त्री पात्र पारंपरिक नैतिक संरचनाओं में बंधे हुए निष्क्रिय पात्र नहीं है, बल्कि वह अपने भीतर के रिक्तता–बोध, असुरक्षा, प्रेम और आत्मसम्मान के जटिल द्वंद्वों से गुजरती हुई आधुनिक चेतना की प्रतिनिधि बनकर उभरती हैं। अज्ञेय के स्त्री पात्रों में आत्मीयता की आकांक्षा है, किंतु साथ ही यह भय भी है कि कोई संबंध उनकी स्वतंत्रता सत्ता को निगल ना जाए। यही कारण है कि उनके संबंधों में निकटता और दूरी साथ–साथ चलती है। वे संवाद करती हैं, किंतु भीतर कहीं एक मौन बचाए रखती हैं। अज्ञेय ने उनके माध्यम से यह दिखाया है कि आधुनिक स्त्री की सबसे बड़ी त्रासदी केवल सामाजिक बंधन नहीं, बल्कि आत्मीय संबंधों के भीतर भी संवादहीनता का बढ़ता हुआ अंधकार है।

उपन्यास 'अपने–अपने अजनबी' की योके का चरित्र विशेष रूप से उस स्त्री–चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो प्रेम और स्वतंत्रता दोनों को साथ लेकर चलना चाहती है, किंतु अंततः दोनों के बीच फँसकर एक गहरे अस्तित्वगत अकेलेपन का अनुभव करती है। इसी संवेदना को व्यक्त करते हुए उसका यह कथन अत्यंत अर्थपूर्ण बन जाता है–"मनुष्य सबसे अधिक अकेला तब होता है, जब वह किसी के सबसे निकट होता है।" 3. यह संवाद केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि आधुनिक संबंधों की विडंबना का उद्घाटन है। निकटता यहाँ आत्मीयता का आश्वासन नहीं देती, बल्कि कई बार वह मनुष्य को अपने भीतर के रिक्तता–बोध से और अधिक परिचित करा देती है। इसी प्रकार सेल्मा का चरित्र बाहरी दृढ़ता और भीतरी विखंडन के द्वंद्व से निर्मित होता है। वह अपने को नियंत्रित और संतुलित बनाए रखती है, किंतु उसके भीतर असुरक्षा, स्मृति और असंतोष की एक गहरी नदी बहती रहती है।

सेल्मा का मौन कई बार उसके समूचे व्यक्तित्व की भाषा बन जाता है। वह अपनी पीड़ा को सार्वजनिक नहीं करती, क्योंकि वह जानती है कि कुछ भाव शब्दों में व्यक्त होते ही अपनी गरिमा खो देते हैं। उसका यह कथन–"कुछ दूरियाँ शब्दों से नहीं भरतींय उन्हें केवल चुप रहकर सहना पड़ता है"–उसकी मानसिक स्थिति को अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त करता है। यहाँ मौन पराजय नहीं, बल्कि संवेदना की अंतिम शरणस्थली बन जाता है। इस प्रकार योके और सेल्मा अज्ञेय के कथा–साहित्य में 'मन, मौन और विद्रोह' के त्रिकोण को मूर्त करती हैं। उनका प्रतिरोध अत्यंत सूक्ष्म और आंतरिक है। वे संबंधों को अस्वीकार नहीं करतीं, किंतु उनमें अपनी अस्मिता के विलय को भी स्वीकार नहीं करतीं। यही कारण है कि उनका मौन एक प्रकार का आत्मसंरक्षण बन जाता है। अज्ञेय की स्त्री–दृष्टि को केवल प्रगतिशील या आधुनिक कह देना पर्याप्त नहीं होगा। उनकी दृष्टि मूलतः मनोवैज्ञानिक है। वे स्त्री को किसी सामाजिक आदर्श या नैतिक प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसे उसकी समस्त जटिलताओं, कमजोरियों और आकांक्षाओं के साथ चित्रित करते हैं। उनकी स्त्रियाँ कई बार आत्मकेंद्रित

भी लगती हैं, किंतु यही आत्मकेंद्रिकता उनके व्यक्तित्व की स्वतंत्रता का संकेत है। वे केवल 'किसी की पत्नी' या 'प्रेमिका' नहीं हैं, वे स्वयं अपनी एक पृथक सत्ता रखती हैं। अज्ञेय के कथा–साहित्य में स्त्री और पुरुष संबंध भी पारंपरिक नैतिकता से अलग धरातल पर निर्मित होते हैं। यहाँ प्रेम अधिकार नहीं, बल्कि एक जटिल मानवीय अनुभव है और उनकी स्त्रियां मात्र अनन्य प्रेमिकाएं नहीं, बल्कि व्यक्तिगत चेतना से परिपूर्ण क्रांतिकारी व्यक्तित्व हैं। अज्ञेय की उपन्यासों की भांति कहानियों में भी स्त्री पात्रों के मन, मौन और विद्रोह का बहुआयामी और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। अज्ञेय अपने स्त्री पात्रों को करुणा की निष्क्रिय प्रतिमाओं के रूप में चित्रित नहीं करते, वे उनके अंतर्मन की उन सूक्ष्म दरारों को पहचानते हैं, जहाँ जीवन की सबसे गहरी पीड़ाएँ जन्म लेती हैं। इन पात्रों की त्रासदी केवल सामाजिक बंधनों की नहीं है, बल्कि उस मानसिक अकेलेपन की है, जिसमें मनुष्य धीरे–धीरे स्वयं अपने भीतर भी अजनबी होने लगता है। उदाहरण के लिए 'कोठरी की बात' की स्त्री बाहरी सीमाओं से अधिक अपने भीतर की कैद से जूझती दिखाई देती है। यहाँ 'कोठरी' केवल भौतिक स्थान नहीं, बल्कि स्त्री–मन की उस बंद संरचना का प्रतीक है, जहाँ इच्छाएँ, स्मृतियाँ और असहमति दबकर रह जाती हैं। वह बोलती कम है, किंतु उसका मौन लगातार एक अस्वीकृति की तरह उपस्थित रहता है–"कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें कह देने से वे और अधिक अकेली हो जाती हैं।'' अज्ञेय की स्त्री–विषयक दृष्टि गहन मनोवैज्ञानिक समझ के साथ गहनतम हो जाती है, जहां पहुंचकर पाठक एक नई आत्म चेतना से भर उठता है। अज्ञेय की स्त्री पात्रों का मौन पराजय नहीं, बल्कि संवेदना की रक्षाकवच है। इसी प्रकार 'गैंग्रीन' कहानी की नायिका मालती नगरीय जीवन की यांत्रिकता को भली प्रकार रुपायित करती है। अपरिवर्तनीय कार्यों की अविघटित श्रृंखला ने उसे सामान्य और व्यवहारिक जीवन से बिल्कुल काट दिया है। किसी नए परिवर्तन और प्रेरणा के बिना उसका जीवन लगभग जड़ हो चुका है। मालती पर बोझिल व्यस्तता इतनी हावी है कि उसने कई वर्षों बाद मिले अपने मित्र से यह तक नहीं पूछा कि कैसे हो? मालती का मौन किसी प्रकार की क्रांति का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह आधुनिकताबोध के नीचे सांस ले रहे नीरस, निरंतर और रंगहीन जीवन की कथा कहता है–''थोड़ी देर तक तो वह मौन आकस्मिक ही था, जिसमें मैं प्रतीक्षा में था कि मालती कुछ पूछे, किंतु उसके बाद एकाएक मुझे ध्यान हुआ, मालती ने कोई बात ही नहीं की..... यह भी नहीं पूछा कि मैं कैसा हूं, कैसे आया हूं.... .चुप बैठी है...क्योंकि वह निर्बाध स्वच्छंदता अब तो नहीं हो सकती.....पर फिर भी, ऐसा मौन, जैसा अजनबी से भी नहीं होना चाहिए....''4. डॉक्टर सुरेंद्र चौधरी मालती के मौन में नगरीय जीवन के यथार्थ को दर्शाते हैं जिसने एक सामान्य स्त्री को अनचाही घुटन, पीड़ा,ऊब और एकरसता से भर दिया है–''वह दमघुट जिंदगी का भार ढोने वाली नारियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस कहानी में पति और परिवार के द्वारा निरंतर व्यस्त बनाई जाकर कोमल भावों और सौंदर्य के सूक्ष्म संवेदनों में निस्पंद हो जाने वाली नई के जीवन की भावोल्लासविहीन यांत्रिकता का अंकन है।'' 5.

इसी प्रकार अज्ञेय एक कुशल शिल्पकार की भांति अपने स्त्री पात्रों के मौन के माध्यम से उनकी मनोव्यथा और मनोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। अज्ञेय की कहानियों में यह मौन बार–बार स्वरूप बदलकर अलग–अलग संवेदनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त करता है। प्रत्येक कहानी में वर्णित स्त्री पात्र को अलग–अलग रूपों में स्पष्ट रूप से व्याख्यायित किया जा सकता है, जैसे 'हीलीबोन की बत्तखें' में 'हीली' का मौन उसके व्यक्तिगत जीवन के अभाव, सूनेपन और अकेलेपन को रुपायित करता है। वह अपने जीवन के चौंतीसवें वर्ष में भी अकेली है। यही अकेलापन उसके मौन को और अधिक मर्मस्पर्शी बना देता है–''हीली ने एक रूखी–सी मुस्कान के साथ कहा, ''हां, कोई कचरा फैलाने वाला जो नहीं है! मैं यहां अकेली रहती हूं।'' हीली अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए बत्तखें पालती है। बत्तखों का शिकार करने वाली लोमड़ी कैप्टन दयाल की गोली का शिकार हो जाती है। जब हीली लोमड़ी का नितांत घरेलू दृश्य देखती है। मृत लोमड़ी के निर्जीव शरीर से चिपके उसके छोटे बच्चों को देखकर हीली का मन अंदर तक ग्लानि से भर जाता है और इसी आत्मग्लानि में भरकर वह घर लौटकर अपनी 11 बत्तखों को भी मार डालती है। वह शिकार करने वाली लोमड़ी को दोषी नहीं मानती, बल्कि उसे मारने वाले कैप्टन दयाल को अपराधी मानकर कहती है –''दूर रहो, हत्यारे!'' अज्ञेय की अनेक कहानियों में स्त्रियाँ संबंधों के भीतर उपेक्षा की नहीं, बल्कि 'अनसुने रह जाने' की पीड़ा से गुजरती हैं। उनके लिए सबसे बड़ी त्रासदी यह नहीं कि उन्हें प्रेम नहीं मिला, बल्कि यह कि उनकी संवेदना को कभी गंभीरता से सुना ही नहीं गया। यही कारण है कि उनकी स्त्रियाँ कई बार शब्दों से अधिक अपने मौन में

व्यक्त होती हैं। वे प्रत्यक्ष विद्रोह नहीं करतीं, पर अपने भीतर एक ऐसी असहमति बचाए रखती हैं, जो उन्हें पूरी तरह टूटने नहीं देती। इसका सुंदर उदाहरण 'हारिति' कहानी है, जहां हारिति अपने साथियों के साथ राष्ट्रहित में प्राणों की बाजी लगाकर एक सामान्य प्रेम पत्र को गुप्त संदेश पत्र समझकर अधिकारी की प्रेमिका तक पहुंचाती है। कार्य पूरा होने के बाद जब उसे सत्य का ज्ञान होता है तो उसकी मन एक गहरी पीड़ा से भर उठता है–''व्यथा की एक रेखा उसके मुख पर दौड़ गयी। यही था काम, जिसके लिए उसने इतनी मेहनत की थी, यही थी सेवा, जिसके लिए उसने इतना बलिदान किया था। यही था अनुष्ठान, जिसकी पूर्ति के लिए उसने उस घोड़े की, उन बन्धुओं की, और क्वानयिन–की आहुति दी थी–यह प्रेम–प्रवंचना।'' ऐसी स्थिति में हरिति का मौन एक विद्रोह के रूप में मुखर होता है– ''हारिति को मालूम हुआ, उसका गला घुट रहा है। उसके निर्बल शरीर में एकाएक स्फूर्ति आ गयी। उसने एक झटके में अपनी मोटी कमीज फाड़ डाली। .....डायना ने उसकी ओर देखा और चौंकी। उसके मुख पर से वह अनुराग की आभा बुझ गयी। हारिति के वक्ष की ओर देखती हुई विस्मित, चिन्तित, भीत स्वर में वह बोली, ''ओह! तुम–तुम तो स्त्री हो!'' पर तब हारिति स्त्री नहीं रही थी। वहाँ जो पड़ा हुआ था, वह था केवल किसी स्वर्गीय व्यक्ति का परित्यक्त शरीर।'' 6.

अज्ञेय का कथा–साहित्य इस अर्थ में अत्यंत आधुनिक है कि वह स्त्री की पीड़ा को केवल सामाजिक उत्पीड़न की समस्या बनाकर प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसे मानवीय अस्तित्व की गहरी मानसिक और भावात्मक विडंबना के रूप में प्रस्तुत करता है। उनकी स्त्रियाँ इसी कारण स्मरणीय बनती हैं कि वे अपने मौन में भी मनुष्य की सबसे सूक्ष्म और अनकही संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शेखर एक जीवनी–अज्ञेय
2. नदी के द्वीप–अज्ञेय
3. अपने–अपने अजनबी–अज्ञेय
4. अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां–अज्ञेय
5. भाषा त्रैमासिक– मार्च,1981
6. अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां–अज्ञेय

–सहायक आचार्या
हिंदी विभाग
सर्वेश्वरी पी०जी० कॉलेज
नैनी, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

जलवायु पत्रिका का आगामी अंक

'हिन्दी साहित्य में पर्यावरण'

विशेषांक

email : editor.jalvayu@gmail.com
Mobile : 9415063341, 7505573555

दृष्टांत

इटावा सफारी पार्क : जैव विविधता का जीवंत संसार

-शशांक पटेल

⟶ यमुना नदी के तट पर स्थित फिशर फॉरेस्ट क्षेत्र में विकसित इटावा सफारी पार्क केवल वन्यजीवों को देखने का स्थान नहीं है, बल्कि यह प्रकृति संरक्षण और जैव विविधता का एक जीवंत उदाहरण है। लगभग 350 हेक्टेयर क्षेत्र में फैला यह पार्क उत्तर प्रदेश की उन चुनिंदा प्राकृतिक धरोहरों में शामिल है जहाँ वनस्पति, वन्यजीव, पक्षी, तितलियाँ और सूक्ष्म जीव मिलकर एक संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं।

प्रकृति और जीवों के संरक्षण का संगम

किसी भी क्षेत्र की वास्तविक पहचान उसकी जैव विविधता से होती है। जैव विविधता का अर्थ केवल विभिन्न जीव–जंतुओं की उपस्थिति नहीं, बल्कि उनके बीच स्थापित प्राकृतिक संबंधों से भी है। इटावा सफारी पार्क इसी सिद्धांत पर आधारित एक ऐसा संरक्षण क्षेत्र है जहाँ प्राकृतिक आवासों को संरक्षित रखते हुए वन्यजीवों के संरक्षण एवं जन–जागरूकता को बढ़ावा दिया जा रहा है।

वनस्पतियों की हरित विरासत

सफारी पार्क में वृक्षों, झाड़ियों, घासों तथा औषधीय पौधों सहित 452 से अधिक वनस्पति प्रजातियाँ दर्ज की गई हैं। ये वनस्पतियाँ न केवल कार्बन अवशोषण कर पर्यावरण को स्वच्छ बनाती हैं, बल्कि असंख्य पक्षियों, कीटों तथा छोटे जीवों को भोजन और आश्रय भी प्रदान करती हैं। यहाँ की हरियाली क्षेत्रीय जलवायु को संतुलित रखने और मृदा संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

एशियाई शेरों के संरक्षण की अनूठी पहल

इटावा सफारी पार्क की सबसे बड़ी विशेषता इसका एशियाई शेर संरक्षण एवं प्रजनन केंद्र है। भारत में एशियाई शेरों की अधिकांश आबादी गुजरात के गिर क्षेत्र तक सीमित है। ऐसे में इटावा सफारी पार्क एक वैकल्पिक संरक्षण केंद्र के रूप में विकसित किया गया है, जहाँ शेरों के सुरक्षित प्रजनन और संरक्षण के लिए आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई गई हैं। यह प्रयास भविष्य में इस दुर्लभ प्रजाति की सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

वन्यजीवों का विविध संसार

सफारी पार्क में शेर, तेंदुआ, भालू, काला हिरण, नीलगाय तथा विभिन्न हिरण प्रजातियाँ जैसे चीतल, सांभर आदि प्राकृतिक वातावरण के निकट विकसित आवासों में संरक्षित हैं। इन जीवों की उपस्थिति खाद्य श्रृंखला और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शीर्ष शिकारी जीवों की मौजूदगी किसी भी स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र का संकेत मान जाता है।

पक्षियों का स्वर्ग

इटावा सफारी पार्क पक्षी प्रेमियों के लिए किसी स्वर्ग से कम नहीं है। यहाँ 241 से अधिक पक्षी प्रजातियाँ दर्ज की जा चुकी हैं। सर्दियों के मौसम में अनेक प्रवासी पक्षी हजारों किलोमीटर की यात्रा करके इस क्षेत्र में पहुँचते हैं। यमुना नदी, आसपास के जलाशय तथा वन क्षेत्र उनके लिए उपयुक्त आवास उपलब्ध कराते हैं। पक्षियों की विविधता इस बात का प्रमाण है कि पार्क का पारिस्थितिक तंत्र स्वस्थ और संतुलित है।

तितलियाँ : प्रकृति की रंगीन दूत

सफारी पार्क में 73 तितली प्रजातियों का रिकॉर्ड किया जाना इसकी जैविक समृद्धि का महत्वपूर्ण संकेत है। तितलियाँ पर्यावरणीय गुणवत्ता की सूचक मानी जाती हैं। जहाँ तितलियों की विविधता अधिक होती है, वहाँ वनस्पति और पारिस्थितिकी तंत्र सामान्यतः बेहतर स्थिति में होते हैं। इनके द्वारा किया जाने वाला परागण अनेक पौधों के जीवनचक्र के लिए आवश्यक है।

शिक्षा और जन–जागरूकता का केंद्र

इटावा सफारी पार्क केवल संरक्षण तक सीमित नहीं है। यहाँ प्रकृति भ्रमण, जैव विविधता जागरूकता कार्यक्रम, व्याख्यान केंद्र तथा 4डी थिएटर जैसी सुविधाओं के माध्यम से विद्यार्थियों, शोधार्थियों और पर्यटकों को पर्यावरण संरक्षण के महत्व से अवगत कराया जाता है। प्रकृति के प्रति संवेदनशील समाज के निर्माण में यह पार्क महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

भविष्य के लिए एक प्रेरणा

आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन, आवास विनाश और जैव विविधता ह्रास जैसी चुनौतियों का सामना कर रहा है, तब इटावा सफारी पार्क संरक्षण और सतत विकास का एक उत्कृष्ट उदाहरण बनकर उभरा है। यह पार्क दर्शाता है कि यदि वैज्ञानिक प्रबंधन, जनसहभागिता और संरक्षण की भावना साथ आए तो वन्यजीवों और मानव समाज के बीच संतुलित सहअस्तित्व स्थापित किया जा सकता है।

–इटावा, 7417902272

आखिरी पन्ना

जेन जी बनाम.....भारतीय जनमानस

-डॉ.मुश्ताक़ अहमद

⟶ भारतीय जनमानस में आजकल 'जेन–जी' आंदोलन की चर्चा है। सभी सामाजिक लोग या यह कहें कि जो भी सामाजिक तौर पर सक्रिय है वह 'जेन–जी' आंदोलन की भूमिका को युगांतकारी मान रहा है। प्रश्न यह उठता है कि एक–डेढ़ महीने तक भूख हड़ताल पर बैठ जाने या किसी सरकारी लापरवाही के खिलाफ आंदोलन करने से बदलाव की बुनियाद की भूमिका तैयार की जा सकती है क्या। यह सच है कि विगत 4 दशकों से ही समाज में सुचिता का संकट पैदा नहीं हुआ है, बल्कि इस संकट का मुख्य कारण वर्षों से समाज में छायी हुई चुप्पी है जो सरकार से असहमति नहीं बल्कि सहमति दिखाती रही है। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार के बुनियादी मुद्दे गौण हो चुके हैं और इनके स्थान पर धर्म, जाति ने समाज में अपना स्थान बना लिया है। भूख, बदहाली, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार से जूझती हुई जनता के लिए जब सरकार यह कहती है कि देश में बदलाव अब दिखाई दे रहा है। तब सरकार के बदलाव पर सोचना पड़ता है। देश के नौजवानों में यह मुद्दा वर्षों तक गौण रहा है क्योंकि यह पीढ़ी आज भी यही सोच रही है कि येन–केन प्रकारेण नौकरी तथा अन्य चीजें प्राप्त हो जाए और जिंदगी किसी प्रकार चलती रहे। बीते दिनों जब युवाओं का हुजूम सड़कों पर दिखाई दिया तो इसे समसामयिक नाम 'जेन जी' कह दिया गया। इधर कुछ वर्षों में भारत के आस–पास के देशों में जो युवाओं का विद्रोह हुआ और सरकारें बदलीं उसने 'जेन–जी' नामक शब्द को ज्यादा चर्चित कर दिया। जब मुख्य न्यायाधीश ने एक मामले की सुनवाई करते हुए युवाओं को 'काकरोच' कहा तो कुछ युवाओं ने इसे नया रूप दे दिया जो वैश्विक स्तर पर चर्चा का केन्द्र बना। यहीं से भारत में जेन–जी पीढ़ी की बात हो रही है।

सामान्यतः 1997 से 2012 के बीच जन्मे युवाओं को इस पीढ़ी का हिस्सा माना जाता है। यह वह पीढ़ी है जिसने बचपन से ही इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के साथ जीवन बिताया है।

लेकिन क्या जेन जी केवल मोबाइल और सोशल मीडिया में खोई हुई पीढ़ी है? क्या यह वास्तव में उतनी ही स्वार्थी, अधीर और संवेदनहीन है, जितना अक्सर कहा जाता है? या फिर इसके भीतर एक नया समाज बनाने की कोई बुनियादी सोच भी है।

हर पीढ़ी अपने समय की परिस्थितियों की उपज होती है। जेन जी तकनीक के साथ पैदा हुई है। इनके लिए तकनीक कोई सुविधा नहीं, बल्कि जीवन का स्वाभाविक हिस्सा है। डिजिटल दुनिया ने इन्हें डिजिटल ज्ञान दिया है। रोजगार का पारिवारिक–सामाजिक दबाव इन्हें मानसिक तौर पर थका रहा है। प्रत्येक दिन हजारों सफल लोगों को देखकर इन्हें लगता है कि वे पीछे रह गए हैं। यही कारण है कि इस पीढ़ी में चिंता (Anxiety), अवसाद (Depression) और अकेलेपन की भावना पहले की तुलना में अधिक दिखाई देती है।

इस पीढ़ी तकनीकी रूप से दक्ष तो है लेकिन समाज की जोड़ने वाली संस्कृति से दूर है।

रिश्तों की बदलती दुनिया में आज के युवाओं के पास पहले से अधिक संपर्क हैं, लेकिन गहरे संबंध कम हैं। सोशल मीडिया पर हजारों मित्र हो सकते हैं, पर वास्तविक जीवन में मन की बात कहने वाला व्यक्ति बहुत कम मिलता है। रिश्तों में अपेक्षाएँ बढ़ी हैं, धैर्य घटा है और विकल्पों की अधिकता ने स्थिरता को कठिन बना दिया है। यही कारण है कि कई बार यह पीढ़ी भावनात्मक रूप से असुरक्षित महसूस करती है।

सोशल मीडिया पर अधूरी सूचनाएँ, अफवाहें और कृत्रिम छवियाँ वास्तविकता को धुंधला कर देती हैं। इसलिए कई बार जेन जी बहुत कुछ जानती हुई भी गहराई से सोचने का समय नहीं निकाल पाती। इस पीढ़ी में धैर्य का संकट है। यह संकट डिजिटल दुनिया के ज्ञान ने पैदा किया है। यह तुरंत परिणाम चाहते हैं जबकि समाज को मज़बूत बनाए रखने के लिए ज्ञान और धैर्य दोनों जरूरी है। सब कुछ मिनटों में कर लेने की चाहत में धैर्य का विकास कठिन हो जाता है। जैसा कि कुछ मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञों का कहना है कि जेन–जी पीढ़ी के अंदर धैर्य नहीं है। हर पीढ़ी की अपनी शक्तियाँ और सीमाएँ होती हैं। जेन जी तकनीकी रूप से अत्यंत सक्षम होने के साथ–साथ वैश्विक सोच रखती है, नए विचारों को अपनाने में संकोच नहीं करती

और परिवर्तन से भयभीत नहीं होती। लेकिन साथ ही इसे मानसिक स्थिरता, भावनात्मक संतुलन, गहन अध्ययन, धैर्य और मानवीय संबंधों को मजबूत करने की आवश्यकता है। पुरानी और नई पीढ़ी में समस्या तब उत्पन्न होती है जब दोनों पीढ़ियाँ एक–दूसरे को समझने के बजाय केवल आलोचना करती हैं। पुरानी पीढ़ी अनुभव लेकर आई है जबकि नई पीढ़ी नवीनता लेकर आई है। यदि अनुभव और नवीनता का मिलन हो जाए, तो समाज अधिक संतुलित बन सकता है।

जेन जी न तो पूरी तरह आदर्श है और न ही पूरी तरह भटकी हुई। इस पीढ़ी के भीतर अपार ऊर्जा,रचनात्मकता और परिवर्तन की क्षमता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि तकनीक इनके जीवन का साधन बने न कि स्वामी। जरूरी यह है कि यह पीढ़ी जिम्मेदारी के साथ जुड़े और इनकी सफलता केवल प्रसिद्धि या धन तक सीमित न रह जाए बल्कि मानवीय मूल्यों से भी परिभाषित हो। इतिहास गवाह है कि हर नई पीढ़ी पहले गलत समझी जाती है, बाद में वही भविष्य का स्वरूप गढ़ती है। संभव है कि आज जिस जेन जी को लेकर समाज असमंजस में है, वही आने वाले समय की सबसे प्रभावशाली पीढ़ी सिद्ध हो।

जेन–जी के बारे में मनोवैज्ञानिकों का यह कहना है कि–"यदि किसी पीढ़ी को समझना हो, तो उसके हाथ में पकड़े हुए उपकरणों को मत देखिए बल्कि उसके मन में चल रहे प्रश्नों को समझिए।" यहां प्रश्न यह भी उठता है कि इस पीढ़ी के अंदर कैसे प्रश्न चल रहे हैं, सरकारों को जवाबदेह बनाना या अपना कैरियर देखना। 4 दशकों का सच यह भी है कि युवा व्यक्तिगत ज्यादा हुआ है और सामूहिकता कम हुई है। इस पीढ़ी के बारे में यह कहा जाता है कि यह पीढ़ी आलसी है, भावुक है, परंपराओं से कट चुकी है, "रील्स की पीढ़ी" है। किन्तु इतिहास हमें सिखाता है कि प्रत्येक नई पीढ़ी के आविष्कार को उसके पूर्वजों ने पहले गलत ही समझा है। जब रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट आया तो इसे पुरानी पीढ़ी ने नकारते हुए गुलामी की तरफ बढ़ने वाला कदम बताया। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता और सोशल मीडिया के युग में वही चिंता जेन जी को लेकर दिखाई देती है।

लेकिन प्रश्न यह नहीं है कि जेन जी बदल गई है। वास्तविक प्रश्न यह है कि दुनिया कितनी बदल चुकी है। प्रत्येक पीढ़ी अपने समय से संवाद करती है। इसलिए जेन–जी को समझने के लिए हमें उस समाज को समझना होगा जिसमें उसकी चेतना विकसित हुई। यदि बीसवीं शताब्दी का मनुष्य स्थिर जीवन जीता था, तो इक्कीसवीं शताब्दी का युवा परिवर्तन के तूफान में बड़ा हुआ है।

उसने देखा तकनीक हर वर्ष बदल रही है। नौकरियाँ बदल रही हैं। शिक्षा के तरीके बदल रहे हैं। रिश्तों की परिभाषाएँ बदल रही हैं। कैरियर का अर्थ बदल रहा है। और अब AI मनुष्य को चुनौती दे रहा है।

ऐसे समय में पला–बढ़ा युवा स्थिर कैसे रह सकता है? उसकी सबसे बड़ी विशेषता अनुकूलन (Adaptation) है। भारत में समस्या केवल तकनीक नहीं है। समस्या दो युगों का एक साथ उपस्थित होना है। एक तरफ दादा–दादी का संसार है–जहाँ परिवार पहले था और व्यक्ति बाद में। दूसरी ओर डिजिटल संसार है–जहाँ व्यक्ति पहले है और समुदाय बाद में। जेन जी इन दोनों के बीच पुल बनना चाहती है। कभी वह सफल होती है तो कभी टूट जाती है। समाधान मोबाइल तोड़ने में नहीं है। समाधान तकनीक छोड़ने में भी नहीं है। समाधान संतुलन में है। ऐसी शिक्षा चाहिए जो केवल रोजगार न दे, बल्कि जीवन जीना भी सिखाए। ऐसा परिवार चाहिए जो केवल आदेश न दे, बल्कि संवाद भी करे। ऐसा समाज चाहिए जो केवल आलोचना न करे, बल्कि मार्गदर्शन भी करे। और ऐसा युवा चाहिए जो केवल अधिकार न माँगे, बल्कि उत्तरदायित्व भी स्वीकार करे।

जेन जी कोई समस्या नहीं है–वह एक प्रश्न है और हर प्रश्न अपने भीतर भविष्य का उत्तर छिपाए होता है। यह पीढ़ी शायद इतिहास की सबसे अधिक बेचैन पीढ़ी है, क्योंकि यह इतिहास की सबसे अधिक परिवर्तनशील दुनिया में जी रही है। इनसे संवाद स्थापित करके समझ विकसित करने की आवश्यकता है। आगामी वर्षों में यह पीढ़ी मानव को सिखाएगी कि तकनीक चाहे जितनी भी आगे बढ़ जाए, मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति उसका मन, उसकी संवेदना और उसका चरित्र ही रहेगा।

जब इतिहास इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों को लिखेगा, तब संभव है कि वह यह दर्ज करे "यह वह समय था जब मनुष्य ने मशीनों को बुद्धि दी, और उसी समय उसे यह निर्णय भी लेना पड़ा कि अपने हृदय की रक्षा कैसे की जाए। उस निर्णय की सबसे बड़ी जिम्मेदारी जेन जी के कंधों पर थी।"

–सिविल लाइंस
आज़मगढ़

वित्त मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पंजीकृत एक सामाजिक संस्थान

CIN: U88100UP2025NPL234267 Darpan ID : UP/2025/0901115

अस्तित्व फाउंडेशन

हीरापट्टी, आज़मगढ़-276001 (उत्तर प्रदेश)

An Initiative to Nurture Health, Environment and Promote Education, Literature









DONATE US

ASTITVA FOUNDATION

SCAN & PAY

UPI ID: 9415063341@sbi

HYPERSONIC
MEDIA PUBLICATION
· YOUR VISION, OUR PRINT ·

OUR PREMIUM PRINTING SERVICES

FLEX BANNER | SIGN BOARD | VISITING CARD | LETTERHEAD | DOCTOR FILE | ID CARD ETC.

EXCELLENCE IN PRINTING | PRECISION IN EVERY DETAIL

Harra Ki Chungi, Azamgarh
9984842222
9670621111
hypersonicmediapublication@gmail.com

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक अजय गौतम द्वारा प्रयाग प्रेस, गुरूटोला, आज़मगढ़ से मुद्रित एवं मुहल्ला सीताराम, आज़मगढ़ से प्रकाशित।

संपादक – डॉ. अजय गौतम

Dr. Mushtaque's
SIMILIMUM HOMOEOPATHY

A HOMOEOPATHY CKD CLINIC

Gentle Care. Natural Healing.
Better Tomorrow.



विशेष चिकित्सा

गुर्दा, पेशाब एवं दिल की बीमारियों

- CKD
- Polycystic kidney
- Nephrotic Syndrome
- Kidney Stone (गुर्दे की पथरी)
- Prostate Gland
- बार बार पेशाब कर देना
- Hydronephrosis
- Uric Acid
- Lipid Disorder

स्त्री रोग

- PCOD
- Falopian tube
- Menstrual Disorder (Absent Menses)
- Uterine Fibroid
- Breast Fibroid (Fibroadenoma)
- Fibroadenodis
- Utrine Prolapse
- Mood Swing
- Lipid Disorder

मानसिक रोग

- OCD
- Hysteria
- Autism
- Schizophrenia
- Mania

- Safe Natural Effective
- Personalized Care
- No Side Effects
- Holistic Healing Approach



Dr. Mushtaque Ahmad

B.Sc., B.H.M.S., CCH, ACN

- Experienced & Compassionate Care
- Natural & Holistic Homeopathic Treatment
- Dedicated to Your Better Health

Healing Naturally, Living Better.

Website: similimumhomoeo.com

ADDRESS:
Dr Mushtaque Ahmad
Dr Mushtaque's Similimum Homoeopathy, Shiv Sadan,
Near BSNL OFFICE, Civil line, Azamgarh,
Uttar Pradesh - 276001, INDIA

Contact:
9453870502, 9454510502

Consultation by Appointment
10:00 AM - 02:00 PM | 05:00 PM - 08:00 PM